भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

वर्ष- 1, अंक- 4, जुलाई, 2014

राष्ट्रीय कायाकल्प

(हिन्दी-त्रैमासिक)

भारत में
भ्रष्टाचार की विभीषिका
स्वरुप एवं समाधान

महात्मा गाँधी की दृष्टि में

व्यक्ति और समाज के लिए

7 सात घोर पाप

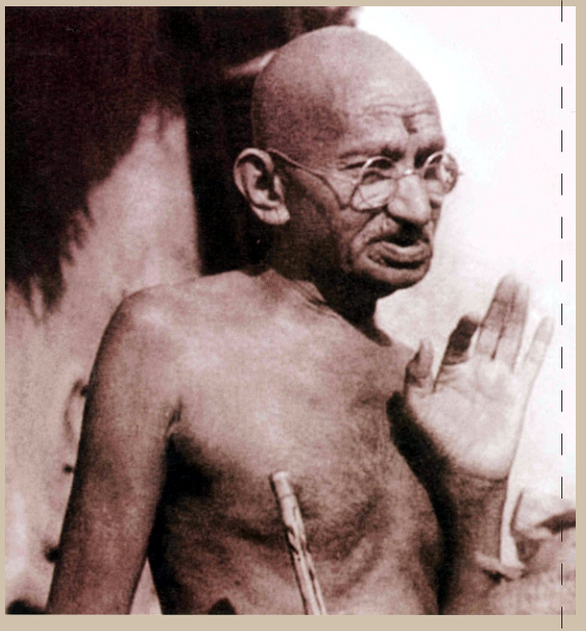

1. बिना श्रम का धन
2. बिना विवेक का सुख
3. बिना मानवता का विज्ञान
4. बिना चरित्र का ज्ञान
5. बिना सिद्धान्त की राजनीति
6. बिना नैतिकता का व्यापार
7. बिना त्याग की पूजा

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच का मुखपत्र

राष्ट्रीय कायाकल्प

वर्ष 1, अंक 4, जुलाई 2014

संपादक
डा. त्रियुगी प्रसाद

संपादन सहयोगी
राजेश शुक्ल

सहायक संपादक
बिपेन्द्र

सहयोग राशि :
प्रति अंक रु. 30.00
व्यक्तिगत वार्षिक रु. 110.00
संस्थागत वार्षिक रु. 150.00

संपर्क :
173 बी, श्रीकृष्णपुरी
पटना 800001
टेलीफोन : 0612-2541276
email: rashtriyakayakalp@gmail.com

इस अंक में

मत-सम्मत 02

संपादकीय 03

राष्ट्रीय काया में भ्रष्टाचार का घुन 6

हजारों साल के भारत के इतिहास में मुगल शासन काल तक राष्ट्रीय जीवन में एक समस्या या विकृति के रूप में भ्रष्टाचार व्याप्त होने का कोई उल्लेख या प्रमाण नहीं मिलता। देश में भ्रष्टाचार का उदय स्पष्ट रूप में औपनिवेशिक शासन काल में हुआ।

भारत में भ्रष्टाचार के स्वरूप की व्यापकता 10

भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार कोई अलग–थलग समस्या नहीं है। यह स्वयं तो शासन व्यवस्था के अभिन्न और अनिवार्य अंग के रूप में विद्यमान है और यह राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण आयामों को कुप्रभावित कर रहा है। इसको समूल नष्ट किए बिना राष्ट्र कदापि स्वस्थ और सशक्त नहीं हो सकता।

हर बुराई की जड़ भ्रष्टाचार नहीं 17

अपनी किताब 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में नेहरू ने लिखा है, 'मालिक गोरे से सांवले न हों, बल्कि सचमुच में जनता का शासन हो, जो जनता द्वारा और जनता के लिए हो तथा इससे हमारी गरीबी और तंगहाली खत्म हो।' ऐसा लिखकर वे गांधी को याद करते हैं।

भ्रष्टाचार की बुनियाद कहाँ है? 19

कभी–कभी भ्रष्टाचार की कुछ सनसनीखेज घटनाओं को लेकर जो भ्रष्टाचार विरोधी वातावरण बनता है या 'लहर' देश में पैदा होती है, उसका खोखलापन यह है कि उसमें सामाजिक स्थिति और नियंत्रण व्यवस्था की बुनियादी खामियों पर ध्यान नहीं जाता है।

भ्रष्टाचार और शासन व्यवस्था 22

ऐसे में भ्रष्टाचार की बुनियाद को समझने की जरूरत है। यह समझने की जरूरत है कि भ्रष्टाचार व्यवस्था का प्रतिफल है और व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव लाए बगैर भ्रष्टाचार से नहीं निपटा जा सकता। व्यवस्था में बदलाव की पहली जरूरत शासन में जनता की भागीदारी बढ़ाना होगा।

महात्मा गाँधी क्यों समझते थे... 24

शहर के लोग क्या जानें कि आधा पेट खाने वाली भारत की जनता धीरे–धीरे प्राणहीनता की स्थिति में गिरती जा रही है। शहरवासी यह भी नहीं समझते कि उनका थोड़े से आराम की जिन्दगी उस दलाली पर कायम है जो उन्हें विदेशी शोषणकर्त्ता के काम के लिए मिलती है और शोषणकर्त्ता का मुनाफा और उनकी दलाली दोनों जनता को चूसने से आती है।

भारत के भ्रष्टाचार की समस्या... 28

इस तरह दिव्यद्रष्टा महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में संचालित विश्व का अनोखा स्वतंत्रता संग्राम अपना लक्ष्य प्राप्त करेगा, लाखों स्वतंत्रता सेनानियों का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा और करोड़ों भारतीयों का वर्षों से संजोये स्वतंत्र भारत का सपना साकार हो उठेगा।

प्रश्नोत्तर के माध्यम से... 31

स्वामित्वाधिकारी, संपादक, प्रकाशक, मुद्रक डा. त्रियुगी प्रसाद द्वारा 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना 800001 से प्रकाशित एवं वातायन मीडिया एण्ड पब्लिकेशंस प्रा.लि., अयोध्या अपार्टमेंट, फ्रेजर रोड, पटना में मुद्रित

मत-सम्मत

शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की व्यावहारिकता

हमें देश छोड़े 44 साल हो गये। इस बीच हिन्दी बोलना, पढ़ना और लिखना न के बराबर ही रहा। जमाने बाद इस पत्रिका को पढ़ने और उस पर अपना मत लिखने बैठा। शुरुआत कुछ भाषा–सम्बन्धी दिक्कतों से हुई – मुख्यतः कठिन शब्दों के प्रयोग और पुराने अखबारों एवं पत्रिकाओं से विभिन्न सी लगती लिखने की शैली के कारण। सम्भवतः इसमें दोष मेरा अर्थात मेरी स्थिर और कुछ जंग लगी भाषा का था या फिर मैं लक्षित पाठक समूह के बाहर हूँ। कठिनाइयों के बावजूद भी मैंने पत्रिका का दूसरा अंक पढ़ा और सम्पादक की आकांक्षाओं और प्रगतिशील लेखों से प्रभावित हुआ। शासन की व्यवस्था और इसके फलस्वरूप देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक दशा का यथार्थ वादी विवरण सराहनीय है। समस्याओं के समाधान की भी एक झलक मिली और आशा है भविष्य के अंकों में प्रस्तावित व्यवस्था का विस्तृत विवरण – वैचारिक और व्यावहारिक दृष्टिकोणों से विश्लेषण के साथ पढ़ने को मिलेगा। व्यावहारिक से मेरा मतलब है विचारों का पत्रिका से उठकर वास्तविकता में परिवर्तन के मार्ग का एक मानचित्र (रोडमैप)।

पत्रिका की सफलता के लिये शुभकामनाओं सहित,

कृष्ण प्रताप सिन्हा

(श्री सिन्हा पहले पटना विश्वविद्यालय में अध्यापक थे। 44 साल पूर्व अमेरिका आए, पीएचडी किया और इंजीनियरिंग परामर्शी के रूप में सक्रिय रहे। दक्षिणी अमेरिका के देशों का उन्हें व्यापक अनुभव है।)

सराहनीय प्रयास

मैंने ''राष्ट्रीय कायाकल्प'' पढ़ा। यह राष्ट्रीय हित में एक सराहनीय प्रयास है। सभी को इसमें सहायता, समर्थन और सहयोग करना चाहिए। इस प्रयास में काफी लम्बा रास्ता तय करना है। भारत जिस प्रकार से शासित हो रहा है, उसे बदलना आसान नहीं है। डॉ० प्रसाद विद्वान व्यक्ति हैं। उनका प्रयास और उद्देश्य प्रशंसनीय है। मैं इस उद्देश्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हूँ।

(विश्वनाथ चौधरी, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड के भूतपूर्व निदेशक)

भारत का विकृत लोकतंत्र

मैंने आपके द्वारा इमेल से भेजे गए 'राष्ट्रीय कायाकल्प' पत्रिका के मार्च 2014 अंक को पढ़ा।एक बात तो कह देना ठीक रहेगा कि 45 वर्षों से भारत से बाहर रहने पर भारत के बारे में मेरा विचार और बोध आपके विचार से भिन्नहोसकताहै।

लोकतंत्र, जो इस अंक का मुख्य विषय वस्तु है, का विचार सबसे पहले ग्रीस में आया। कुछ वर्ष पहले मैं ने ग्रीस के एक प्रमुख दार्शनिक 'प्लेटो' लिखित पुस्तक ''दी रिपब्लिक'' पढ़ी थी जिसमें लोकतंत्र की विवेचना की गयी थी। उस समय लोकतंत्र पर आधारित शासन व्यवस्था एक क्रांतिकारी विचार था, क्योंकि इतिहास की उस अवधि में सर्वसत्तात्मक शासन व्यवस्था थी जिसमें कोई मजबूत व्यक्ति कमजोर लोगों पर राज करता था। प्लेटो लोकतंत्र के पक्षधर नहीं थे। शासन व्यवस्था के बारे में उनका मत था कि किसी देश का शासन ऐसे दार्शनिकों या विवेकशील व्यक्तियों के अधीन होना चाहिए जिन्हें धन या सम्पत्ति की कोई स्पृहा नहीं हो। यह पढ़कर मैं ने सोचा कि भारत का शासन इस आदर्श से कितना दूर है। पहली बात तो यह है कि हमारे देश के शासक ऐसे हैं जिन्हें विवेकशील तो नहीं ही कहा जा सकता। जहाँ तक धन और सम्पत्ति का सवाल है, यदि यह उनका अपना पहले से नहीं भी है तो वे इन्हें जमा करने में समय नहीं गँवाते। इसलिए ले दे कर तो वही सिलसिला चल रहा है – मजबूत व्यक्ति का कमजोर पर शासन जैसा महाराजाओं और नवाबों के राज्य में था। यह शासन कतई लोकतांत्रिक नहीं है – ''जनता का, जनता के लिए और जनता के द्वारा'' से कोसों दूर।

– विजय कांत खंडेलवाल

(श्री खंडेलवाल पटना विश्वविद्यालय से इंजीनियरिंग में स्नातक तथा न्यू साउथवेल्स विश्वविद्यालय से पीएचडी हैं।1965 में भारत छोड़कर आस्ट्रेलिया में बस गए हैं लेकिन भारत आते जाते रहते हैं)

भारत की शासन व्यवस्था का पुनरावलोकन अनिवार्य

हमारे संवधिान की क्रियाशीलता के साठ वर्षों से अधिक के अनुभव के आधार पर हमारी शासन व्यवस्था का पुनरावलोकन आवश्यक हो गया है। इस अवधि में शिक्षा का विस्तार हुआ, अंतर्राष्ट्रीय सम्बंधों से हम अभिज्ञ हुए, और समाज में कार्यरत शोषण और अन्याय का बोध हुआ, जिससे शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की अनिवार्यता स्पष्ट हो गयी है।

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्त्तन विचार मंच ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर ठीक ही जोर दिया है। सत्ता से भ्रष्टाचार उत्पन्न होता है और केन्द्रीकृत सत्ता भ्रष्टाचार को घनीभूत कर देती है। हाल के दिनों में इसका आँख खोलने वाला उदाहरण है दिल्ली में 2010 में आयोजित कॉमनवेल्थ गेम्स।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी सत्ता के विकेन्द्रीकरण के हिमायती थे। मेक्सिको, जर्मनी, रूस, चीन और भारत में राजनीतिक गतिविधियों और नीति निर्धारण का अनुभव प्राप्त प्रसिद्ध क्रांतिकारी एम०एन० राय ने ''स्वतंत्र भारत का संविधान'' का एक प्रारूप बनाया था। इसका भी आधार सत्ता का विकेन्द्रीकरण ही था।... कभी–कभी तो ऐसा लेगता है कि भारत में लोकतंत्र नहीं, ''निर्वाचित राजतंत्र'' है।

– प्रो० एस० एन० चक्रवर्ती

(भूतपूर्व प्राचार्य, बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पटना विश्वविद्यालय)

सम्पादक की कलम से

संपादक परिचय:

डा. त्रियुगी प्रसाद इंजीनियरिंग में पटना विश्वविद्यालय से स्नातक, रुड़की विश्वविद्यालय (संप्रति रुड़की आइआइटी) से स्नातकोत्तर तथा इलिन्वॉय विश्वविद्यालय (अमेरिका) से पीएचडी की डिग्री हासिल करने के बाद पटना विश्वविद्यालय में अध्यापक बने। अध्यापन के अलावा जल संसाधान अध्ययन संबंधी शोध में वह काफी सक्रिय रहे। उनके प्रयास से पटना विश्वविद्यालय अंतर्गत जल संसाधन अध्ययन केंद्र स्थापित हुआ जिसके अपनी अवकाश प्राप्ति तक (1999 अक्तूबर) वे संस्थापक निदेशक रहे। उन्होंने हार्वर्ड विश्वविद्यालय (अमेरिका) और मॉस्को विश्वविद्यालय (रूस) से जल संसाधन के क्षेत्र में उच्च शोध का अनुभव और विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त किया।

डा. प्रसाद छात्र जीवन से ही देश की दशा और दिशा में गहरी रुचि लेते रहे हैं। पटना विश्वविद्यालय के प्रथम छात्र यूनियन में बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग के प्रतिनिधि थे। इलिन्वॉय विश्वविद्यालय (अमेरिका) में भारतीय छात्र संघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। पटना विश्वविद्यालय में अपने सेवाकाल में शिक्षण, शोध और संबद्ध कार्यों में व्यस्तता के चलते इस क्षेत्र में गहरी रुचि के बावजूद अधिक समय नहीं दे सके। अब अवकाश प्राप्ति के पश्चात् इस क्षेत्र में सक्रिय होकर राष्ट्र की सेवा में जुटे हैं।

प्रस्तुत है राष्ट्रीय कायाकल्प का तीसरा प्रकाशन और चौथा अंक (मार्च 2014 में प्रकाशित पिछला अंक दूसरे और तीसरे अंकों का संयुक्तांक था)। अपरिहार्य कारणों से इस अंक के प्रकाशन में भी थोड़ा विलम्ब हुआ जिसके लिए हमें खेद है। संतोष यही है कि पिछले प्रकाशन की अपेक्षा काफी सुधार है। हम पुनः आशा करते हैं कि अगले अंक से हम पूर्णतः समयबद्ध रहने में सफल होंगे।

इस बीच भारत में एक बड़ा राजनीतिक परिवर्त्तन हुआ। सोलहवीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव में, जो साधारणतया प्रत्येक पाँच वर्षों के अन्तराल पर होता है, 10 वर्षों से चली आ रही कांग्रेस पार्टी नीत गठबंधन बुरी तरह हार गया और गणतंत्र भारत में पहली बार भारतीय जनता पार्टी (भाजपा), जो हिन्दू राष्ट्रवादी दक्षिण पंथी विचार धारा की पार्टी समझी जाती है, पूर्ण बहुमत में लोकसभा में आई, हालांकि चुनाव पूर्व इसका भी कुछ अन्य क्षेत्रीय दलों से गठबंधन था और इस गठबंधन के साथ लोकसभा में इसका बहुमत और भी पुष्ट हो गया। इस परिवर्त्तन की वस्तुनिष्ठ समीक्षा आवश्यक है जिससे इसे सही अर्थों में समझा सके और राष्ट्र के लिए सही सबक मिल सके। भाजपा की सफलता का सबसे कारण कांग्रेस के प्रति लोगों का भारी असंतोष या कहें तो रोष भी है, जिसका प्रमुख कारक इसकी सरकार में भ्रष्टाचार की कई बड़ी घटनाओं का उजागर होना, दूसरा कारक बेलगाम बढ़ती महँगाई और तीसरा कारक मंद आर्थिक गतिविधि जिसके चलते हुई विशालकाय बेरोजगारी। पन्द्रहवीं लोकसभा में कांग्रेसनीत गठबंधन के लगातार दूसरी बार मिले बहुमत के पीछे मुख्य कारण था पिछले वर्षों में आई आर्थिक गतिविधियों की तीव्रता जो स्थायी नहीं सिद्ध हुई। देश और जनमानस की ऐसी स्थिति का लाभ लेने में भाजपा ने, जो राष्ट्रीय स्तर पर लगभग एकमात्र राजनीतिक विकल्प था, कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी। प्रचार–प्रसार के विभिन्न माध्यमों का भरपूर उपयोग कर क्षेत्रीय उम्मीदवार और दलीय सिद्धांतों दोनों को गौण करते हुए गुजरात के लोकप्रिय और सफल मुख्यमंत्री की स्वच्छ छवि वाले नरेन्द्र मोदी को भावी प्रधानमंत्री के रूप में देश के सामने प्रस्तुत करने की रणनीति बहुत कारगर सिद्ध हुई। संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा और संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप संसद में बहुमत वाले दल के सदस्यों द्वारा निर्वाचित नेता प्रधानमंत्री का दावेदार होता है और सारे सरकारी निर्णय प्रधानमंत्री के नेतृत्व में गठित कैबिनेट द्वारा लिए जाते हैं। इस संदर्भ में किसी

दल द्वारा किसी व्यक्ति को अपना भावी प्रधान मंत्री घोषित कर और उसे केन्द्र में रख पूरा धनबल के साथ ऐसा चुनावी प्रचार करना, जैसे वह सिर्फ अपने संसदीय क्षेत्र से नहीं, देश के हर संसदीय क्षेत्र से खड़ा हो, यह बात देश की राजनीति को जिस राह पर ले जाने का संकेत दे रही है, उस पर गंभीरता से सोचना चाहिए।

जो भी हो, यह चुनाव परिणाम भी पूर्ववर्ती चुनावों के परिणामों की दिशा में है जिसमें जनता सत्तासीन दल या गठबंधन को नकार देती है। कोई भी दल या गठबंधन सत्तासीन हो, कोई भी नेता उस दल या गठबंधन का मुखिया हो या उसके नेतृत्व में संचालित सरकार का कैसा भी प्रदर्शन रहा हो – अच्छा, सामान्य और बुरा, जनता ने अधिकांशतः उसको नकारा ही है। जनता की सत्ताधारी–विरोधी प्रवृत्ति कहकर इसकी व्याख्या कर दी जाती है। वस्तुतः इस प्रवृत्ति में निहित संदेश की तरफ हम ध्यान नहीं देते। जब शासन व्यवस्था ही दूषित हो तो कोई भी और कैसी भी सरकार हो, वह व्यवस्था–जनित विकृतियों यथा भ्रष्टाचार, सामाजिक अशांति और अंतर्विद्रोह, गरीबी इत्यादि जिनसे जनता त्रस्त होती है, निराकरण कर ही नहीं सकती। उदाहरण के तौर पर, पूरे पाँच साल तक चली भाजपा नीत गठबंधन की सरकार, जिसके मुखिया लोकप्रिय और लब्धप्रतिष्ठ राजनेता बाजपेयी जी थे, जिसका प्रदर्शन आम तौर से अच्छा माना जाता था और तत्कालीन भारत की ''चमकता भारत'' की संज्ञा को आम तौर से अतिशयोक्ति नहीं मानी जाती थी, को भी 2004 में हुए आम चुनाव में जनता ने नकार दिया। इस बार के चुनाव में कांग्रेस की करारी हार और भाजपा की अभूतपूर्व जीत के पीछे सत्ताधारी दल के प्रति जनता का असंतोष ही नहीं, रोष भी था।

अतः इस चुनाव का सतही अर्थ न निकाल कर गणतंत्र भारत में पिछले सोलह चुनावों के परिणामों का यदि समेकित विश्लेषण किया जाय तो पाया जायेगा कि प्रयः हर चुनाव में नकारात्मक वोट के माध्यम से जनता वर्त्तमान व्यवस्था से अपना असंतोष और निराशा ही व्यक्त करती रही है। यह व्यवस्था उसकी अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल रही है और उसकी आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं है। जनता को व्यवस्था परिवर्त्तन की अपनी आकांक्षाओं को सकारात्मक रूप में व्यक्त करने का दो ऐतिहासिक अवसर मिला है। एक अवसर था जब देश में 21 महीने की अवधि के आपातकाल के बाद 1977 में चुनाव हुआ। लोकनायक जयप्रकाश के ''सत्ता परिवर्त्तन नहीं व्यवस्था परिवर्त्तन'' के आह्वान पर जनता ने 25 साल से सत्ता में रही कांग्रेस पार्टी को गणतंत्र भारत में पहली बार सत्ताच्युत कर दिया। आपातकाल के विरूद्ध कांग्रेस पार्टी और विशेषतया तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी के प्रति जनता के रोष ने व्यवस्था परिवर्त्तन के आह्वान की सार्थकता समझने एवं भिन्न पार्टियों का ध्रुवीकरण करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। व्यवस्था परिवर्तन के आह्वान पर सत्ता में आई जनता पार्टी व्यवस्था परिवर्त्तन की दिशा में कुछ नहीं कर पाई, इसका विश्लेषण तो अलग से किया जाना अपेक्षित है लेकिन शीघ्र ही जनता ने इस पार्टी को सत्ताच्युत कर अपनी निराशा व्यक्त कर दी।

जनता की व्यवस्था परिवर्त्तन की आकांक्षा की अभिव्यक्ति का दूसरा ऐतिहासिक अवसर था जब दुर्घटना में संजय गांधी की असामयिक मृत्यु के उपरांत राजीव गांधी, जो इंडियन एयरलाइंस में चालक थे, को राजनीति में लाया गया और उन्हें कांग्रेस पार्टी का महासचिव एवं कुछ अन्य उत्तरदायित्व सौंपे गए। उनकी कई कृतियों और बातों से लगा कि वे मौजूदा राजनीति से भिन्न एक नई राजनीति की बात कर रहे हैं, राजनीति को सत्ता के दलालों से मुक्त करना चाहते हैं, देश को एक नई दिशा देना चाहते है, सनातन भारत को इक्कीसवीं सदी का भारत बनाने की दृष्टि और जज्बा है उनमें, वे महसूस कर रहे हैं कि अब तक गाँवों की उपेक्षा होती रही है, भ्रष्टाचार के चलते उन तक विकास की किरण नहीं पहुँच रही है और उन्हें अधिकार सम्पन्न बनाने की नितान्त आवश्यकता है। इन बातों से लगा कि भारत की सड़ी–गली राजनीति में एक ताजी हवा का झोंका आया, लोगों को लगा कि परिवर्त्तन का एक अग्रदूत आया है। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए आम चुनाव में उनके नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी गणतंत्र भारत के सबसे अधिक बहुमत से जीती, इतना बहुमत तो स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी योद्धा और महान लोकप्रिय नेता जवाहर लाल नेहरू भी नहीं ला सके थे। यह बहुमत सिर्फ सहानुभूति की लहर नहीं था, व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए जनता की वर्षों से संजोयी आशा की अभिव्यक्ति भी था। फिर जनता की आशा चकनाचूर हो गयी। इसका भी अलग से विश्लेषण करना अपेक्षित है। हताशा में जनता ने अगले ही चुनाव में अभूतपूर्व विशाल बहुमत से जीती हुई पार्टी को सत्ताच्युत कर दिया।

व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए बार–बार निराश हुई जनती की आकांक्षा समझने के लिए हाल के महीनों में देश के राजनीतिक क्षितिज पर एक नई पार्टी ''आम आदमी पार्टी (आप)'' का उदय और अल्पकालीन चमक के बाद

अस्तप्राय हो जाने की घटना शिक्षाप्रद है। दिल्ली में केन्द्रित और राष्ट्रीय मीडिया की सुर्खियों में रहने वाले भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलनों से उपजी यह पार्टी भ्रष्टाचार विरोध और शासन के तौर तरीकों में परिवर्त्तन के मुद्दे पर चुनावी राजनीति में आई। चूँकि ये मुद्दे मौजूदा राजनीति और शासन व्यवस्था में परिवर्त्तन लाने की ओर संकेत कर रहे थे, दिल्ली राज्य की विधानसभा के चुनाव में दिल्ली की जनता ने इस पार्टी का, और विशेषतया इस पार्टी के नेता अरविंद केजरीवाल का पुरजोर समर्थन किया। अप्रत्याशित रूप से यह पर्टी विजयी हुई और सरकार बनाने में भी सफल रही। लेकिन परिवर्त्तन और लोकप्रियता की सतही और सस्ती समझ होने के कारण यह पार्टी न तो अपना उत्तरदायित्व निभाने में सफल रही और न ही जनता की उम्मीदों पर खरी उतरी। कुछ ही समय बाद होने वाले लोकसभा चुनाव में यह पार्टी आशा और उत्साह के साथ चुनाव मैदान में उतरी लेकिन प्रदर्शन निराशाजनक रहा। व्यवस्था परिवर्त्तन की राह देखती जनता फिर ठगी सी महसूस करने लगी।

शासन व्यवस्था परिवर्त्तन की अनिवार्यता को सर्व प्रथम महात्मा गाँधी ने समझा था। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद और भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय होने के पूर्व उन्होंने पूरा भारत भ्रमण कर देश की, विशेषतया इसके गाँवों की, घोर दुर्दशा देखी और अपनी विलक्षण दूरदृष्टि से अच्छी तरह समझ गए कि यह दुर्दशा अंग्रेजों द्वारा इस देश पर थोपी गयी शासन व्यवस्था के चलते है। उनके प्रेरणादायी नेतृत्व मे संचालित भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का लक्ष्य हो गया इस शासन व्यवस्था को हटाना और ऐसी व्यवस्था स्थापित करना जिसमें सत्ता का प्रवाह नीचे से ऊपर की ओर हो, न कि उपर से नीचे की ओर। इसी आधार पर महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के लिए देश की जनता का आह्वान किया और उसे इससे जोड़ा। इस तरह भारत के अभिजात्य वर्गों का स्वतंत्रता आंदोलन जन संग्राम बन गया जिसका लक्ष्य था शासन व्यवस्था परिवर्त्तन, न कि सिर्फ अंग्रेजों को भगाना। इस लक्ष्य को पाने के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता एक आवश्यक शर्त थी, गंतव्य तक पहुँचने के लिए एक पड़ाव था जहाँ हम 15 अगस्त 1947 को पहुँच गए। यहाँ पहुँचने के बाद निवर्तमान ब्रिटिश शासकों की मिलीभगत से भारत के ऐसे तत्त्वों ने, जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के लाभुक थे और इस व्यवस्था को कायम रखने में जिनका निहित स्वार्थ था, भारतीय स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया और फलतः संविधान निर्माण के माध्यम से स्वतंत्रता से गणतंत्रता की ओर बढ़ने में देश रास्ते से भटक गया। इस संविधान की प्रस्तावना में जनता की आकांक्षाओं को तो बखूबी व्यक्त किया गया लेकिन इन आकांक्षाओं को जमीन पर उतारने के लिए मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना ली गयी जो अभिकल्पित थी देश को व्यवस्थित ढ़ंग से लूटने के लिए और यहाँ के लोगों का नैतिक पतन सुनिश्चित करने के लिए, और जिसे हटाने का ही लक्ष्य था स्वतंत्रता संग्राम का। महात्मा गाँधी की दूरदृष्टि में अपूर्ण आस्था के चलते उनके शीर्ष अनुयायी भी इसमें सहयोगी बन गए। इस तरह इस संविधान निर्माण में इस संग्राम के महानायक महात्मा गाँधी के प्रति विश्वासघात हुआ, लाखों स्वतंत्रता सेनानियों को ठगा गया और भारत की करोड़ों जनता की आशाओं पर पानी फेर दिया गया। आज साठ से अधिक वर्षों से जनता व्यवस्था परिवर्त्तन का सपना संजोये हर चुनाव में या तो इस सपना के चकनाचूर होने पर अपना असंतोष या रोष व्यक्त करती है, या इस सपने को साकार होने की आशा व्यक्त करती है।

भ्रष्टाचार आदि विभिन्न विकृतियों से ग्रस्त इस देश को और गरीबी आदि विभिन्न समस्याओं से त्रस्त देशवासियों का यदि उद्धार करना है और जनता के सदियों से संजोये सपने को साकार करना है तो हमें महात्मा गाँधी को फिर से याद करना होगा और उस युगपुरूष की बातों पर फिर से गौर करना होगा। हमें समझना होगा कि भारत की समस्याओं और विकृतियों की जननी है यहां की शासन व्यवस्था और शासन व्यवस्था परिवर्त्तन ही है इनका निदान। पिछले कुछ सालों में भ्रष्टाचार का जितना विकराल रूप देश के सामने आया है और इसने जितना जनता को उद्वेलित किया है, उतना शायद किसी और समस्या ने नहीं। राष्ट्रीय जनजीवन के प्रायः सभी आयामों को इसने कुप्रभावित किया है – यहाँ की राजनीति को, देश के विकास को, शिक्षा को, स्वास्थ्य को, राष्ट्रीय सुरक्षा को, व्यापार को, विधि–व्यवस्था को, आर्थिक स्थिति आदि को। हमें यह समझना होगा कि भ्रष्टाचार भाषणों से, चाहे जितना भी प्रभावोत्पादक हो, या जन आंदोलनों से चाहे जितना भी उग्र हो या कानून से चाहे जितना भी कठोर हो, दूर नहीं हो सकता। यह हमारी शोषणात्मक और अनैतिकता परक शासन व्यवस्था का अनिवार्य और अभिन्न अंग है। यह विशालकाय भ्रष्टाचार मिटेगा और समूल नष्ट हो जायेगा शासन व्यवस्था परिवर्त्तन से। इसी मुख्य विषय वस्तु को प्रतिपादित करता हुआ राष्ट्रीय कायाकल्प का यह अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत है।

त्रियुगी प्रसाद

राष्ट्रीय काया में भ्रष्टाचार का घुन

भ्रष्टाचार भारत की एक समस्या, चाहे जितनी भी गंभीर हो, नहीं बल्कि एक बीमारी है जिससे ग्रसित होकर यह दिन प्रतिदिन कमजोर होता जा रहा है। यह बीमारी यदि बढ़ती गयी, तो हमारा देश अशक्त और जर्जर हो जायेगा और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में इसका अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि यह बीमारी खत्म हो, जड़ से खत्म हो जिससे हमारा देश स्वस्थ हो जाये और यह अपनी क्षमता, प्रतिभा और संसाधनों के अनुरूप विकास कर सके और समृद्ध हो सके। मानव शरीर की बीमारी इसकी अस्वाभाविक स्थिति होती है और बीमारी तभी खत्म समझी जाती है, या होती है जब यह समूल खत्म हो जाय, सिर्फ इसके लक्षणों पर नियंत्रण हो जाय या कम हो जाय, यह सर्वथा काफी नहीं है। उसी तरह देश में भ्रष्टाचार तभी खत्म होगा जब यह निर्मूल हो जायेगा, इसकी जड़ खत्म हो जायेगी, हमारे राष्ट्रीय जीवन से भ्रष्टाचार की संस्कृति समाप्त हो जायेगी। सिर्फ कानून बना देने से, चाहे उसमें कितने भी कठोर दंडात्मक प्रावधान हों, भ्रष्टाचार नही मिटाया जा सकता। यदि भ्रष्टाचार की जड़ जीवित और जीवंत हो तो ऐसे कानूनों का दुरूपयोग अवश्यंभावी है, देश के लिए जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। बहुत से ऐसे कठोर कानूनी प्रावधानों, यथा दहेज निवारण कानून, का कटु अनुभव हमें है।

भ्रष्टाचार की विभीषिका को जड़ से खत्म करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें इसकी जड़ की ठीक पहचान और समझ हो। इसके लिए भारत में भ्रष्टाचार का उदय, इसका स्वरूप, इसका प्रसार, इत्यादि बातों की हमें समीक्षा करनी होगी।

सर्वप्रथम तो हमें भ्रष्टाचार को परिभाषित करना होगा। भ्रष्टाचार के शाब्दिक अर्थ के रूप में तो हम कह सकते हैं कि यह आचरण की भ्रष्टता का सूचक है, लेकिन यह पर्याप्त नही है। किस तरह के आचरण की और कैसी भ्रष्टता की हम बात कर रहे हैं, यह समझना आवश्यक है। सार्वजनिक

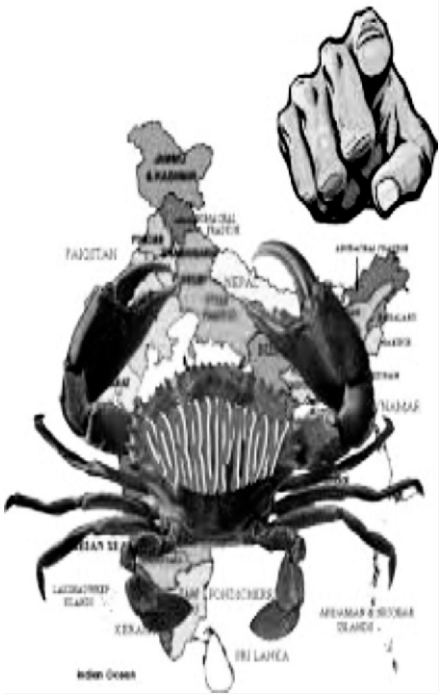

भ्रष्टाचार तभी खत्म होगा जब यह निर्मूल हो जायेगा, इसकी जड़ खत्म हो जायेगी, हमारे राष्ट्रीय जीवन से भ्रष्टाचार की संस्कृति समाप्त हो जायेगी। सिर्फ कानून बना देने से, चाहे उसमें कितने भी कठोर दंडात्मक प्रावधान हों, भ्रष्टाचार नही मिटाया जा सकता। यदि भ्रष्टाचार की जड़ जीवित और जीवंत हो तो ऐसे कानूनों का दुरूपयोग अवश्यंभावी है, देश के लिए जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

हजारों साल के भारत के इतिहास में मुगल शासन काल तक राष्ट्रीय जीवन में एक समस्या या विकृति के रूप में भ्रष्टाचार व्याप्त होने का कोई उल्लेख या प्रमाण नहीं मिलता। देश में भ्रष्टाचार का उदय स्पष्ट रूप में औपनिवेशिक शासन काल में हुआ। अतः भारत में भ्रष्टाचार के उदय की समझ प्राप्त करने के लिए औपनिवेशिक शासन के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

जीवन में किसी न किसी रूप में शासन से सम्बंधित आचरण की भ्रष्टता की ही हम बात कर रहे हैं, व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन या सामाजिक जीवन में, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन से असम्बद्ध हो, आचरण की भ्रष्टता इस भ्रष्टाचार की परिभाषा में नहीं आती। यह भी स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार में संलग्न व्यक्ति का आचरण शासन से अवश्यमेव सम्बद्ध है।

दूसरा, ऐसे व्यक्ति का वह आचरण भ्रष्टता की श्रेणी में आता है जिसमें शासन के किसी नियम या संहिता का उल्लंघन है या अतिक्रमण है। यदि ऐसा नहीं है और जब तक ऐसा नहीं है, वह आचरण भ्रष्ट नहीं कहा जा सकता। अतः स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार शासन से अनिवार्यतः सम्बद्ध है। शासन दो कारकों से निर्धारित होता है, एक शासन व्यवस्था से और दूसरा शासन से सम्बद्ध व्यक्तियों से। अतः किसी देश में भ्रष्टाचार दो कारणों से ही हो सकता है, या तो शासन व्यवस्था दोषपूर्ण है जिसके फलस्वरूप उस शासन से सम्बद्ध सामान्य नैतिकता के व्यक्ति भी भ्रष्टाचार में संलिप्त हो जाते हैं, या उस शासन से सम्बद्ध आम व्यक्ति की नैतिकता निम्न स्तर की है जिसके चलते शासन व्यवस्था के गुण–अवगुण से परे उस व्यक्ति के लिए भ्रष्टाचार में प्रवृत्ति स्वाभाविक है। भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार की समीक्षा इस परिप्रेक्ष्य में की जानी चाहिए।

हजारों साल के भारत के इतिहास में मुगल शासन काल तक राष्ट्रीय जीवन में एक समस्या या विकृति के रूप में भ्रष्टाचार व्याप्त होने का कोई उल्लेख या प्रमाण नहीं मिलता। देश में भ्रष्टाचार का उदय स्पष्ट रूप में औपनिवेशिक शासन काल में हुआ। अतः भारत में भ्रष्टाचार के उदय की समझ प्राप्त करने के लिए औपनिवेशिक शासन के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

विभिन्न देशों में अपनी प्रसिद्धि के चलते भारत में विदेशों से व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह विभिन्न उद्देश्यों से हजारों साल से आते रहे हैं। कुछ तो दर्शन, धर्म, राजनीति विज्ञान या अन्य क्षेत्रों में ज्ञान या अनुभव प्राप्त करने के लिए, कुछ व्यापार के लिए, कुछ अपना साम्राज्य विस्तार या स्थापित करने के लिए और कुछ यहाँ की समृद्धि लूटने के लिए। इस क्रम में जो लोग यहाँ बस गए, वे लोग अपनी विशेषताओं से भारत को प्रभावित कर और भारत की विशेषताओं से प्रभावित होकर भारत के अभिन्न अंग बन गए।

अठाहरवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में मूलतः वाष्प संचालित इंजिन के आविष्कार से ब्रिटेन में जो औद्योगिक क्रांति आई उसने विश्व के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। औद्योगिक उत्पादन में अभूतपूर्व विस्तार से दो समस्याएं उत्पन्न हुईं। एक तो उद्योगों के लिए कच्चे माल की कमी तथा दूसरा उत्पादित वस्तुओं की खपत। इन दोनों समस्याओं का एक ही निदान था – ऐसे देशों की खोज जो संसाधनों में समृद्ध और राजनैतिक रूप से कमजोर और असंगठित हो। ब्रिटेन के समीपवर्ती यूरोप के बहुत से विकसित देशों जैसे फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैंड इत्यादि में भी औद्योगिक क्रांति आई और वे भी इन्हीं दो समस्याओं से जूझते हुए ऐसे ही देशों की खोज में हो गए। औद्योगिक क्रांति के साथ सतही और जल यातायात के साधनों में क्रांतिकारक परिवर्त्तन, मुख्यतः वाष्प चालित रेल इंजन और समुद्री जहाजों के निर्माण से ऐसे देशों की खोज में सहायता हुई। दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के कुछ देश उनकी इस खोज के निशाना बने। तत्कालीन भारत उनके लिए असाधारण रूप से उपयुक्त था। संसाधन समृद्धि के साथ–साथ यहाँ मुगल साम्राज्य कमजोर हो चुका था और देश की राजनीति अंतर्द्वंद्व और अंतर्द्वेष से जूझती हुई बिखराव की स्थिति में थी। फलस्वरूप देश के शासन में अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया। विश्व में एक नई राजनीति का आविर्भाव हुआ – वह था उपनिवेशवाद की राजनीति। इस राजनीति की संस्कृति पहले से सर्वथा भिन्न थी। इसमें एक पूरा देश, एक उपनिवेश – वहाँ के नीचे से लेकर उपर के तबके तक सभी लोग सात समुंदर पार बसे एक दूसरे देश, औपनिवेशिक शासक के गुलाम बन गए। उपनिवेश के सारे संसाधनों एवं लोगों के कार्यकलापों से अन्तिम रूप से लाभान्वित था औपनिवेशिक शासक देश जो उन संसाधनों और कार्यकलापों के आधार पर, या यों कहें कि उपनिवेश के प्राकृतिक और मानव संसाधनों के शोषण के आधार पर समृद्ध होता गया। इस शोषण में सहायता और सहयोग करने

के लिए उपनिवेश के लोगों को पारिश्रामिक, दलाली या प्रलोभन के रूप में उस शोषण का लाभांश मिलता था।

विश्व और भारतीय इतिहास के इसी परिप्रेक्ष्य में उन्नीसवीं सदी में भारत उपनिवेशवाद का शिकार हुआ। संसाधन समृद्ध भारत के शोषण के लिए औपनिवेशिक शासक देश ब्रिटेन ने भारत में जो शासन व्यवस्था स्थापित की उसकी दो विशेषताएं थीं, एक तो शोषण में निपुणता और दूसरे भारत के लोगों का नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करना। जहाँ पहली विशेषता तो औपनिवेशिक शासन की उद्देश्य पूर्ति के लिए अनिवार्य थी, दूसरी विशेषता उच्च संस्कृति सम्पन्न भारतीयों के सन्दर्भ में औपनिवेशिक शासन की लम्बी आयु के लिए आवश्यक थी। औपनिवेशिक शासनकाल में भारत की जो दुःस्थिति हुई, उसमें शासन व्यवस्था की इन दोनों विशेषताओं का ही योगदान रहा है। यह तथ्य कि इस शासन काल के डेढ़ सौ सालों में जितने भयंकर दुर्भिक्ष पड़े, उतने सुजलम् सुफलम् शस्य श्यामलम् भारत के हजारों सालों के इतिहास में भी नहीं पड़े थे, इस शोषण या व्यवस्थित लूट की कहानी हृदय विदारक रूप से बयां करता है। यह कहानी तत्कालीन भारत के गांवों में विशेष रूप से परिलक्षित थी। जहाँ तक नैतिक अधोपतन का सवाल है, इस शासन काल में यह भी अभूतपूर्व ढंग से हुआ, उस भारत में जहाँ 1833 के एक उच्चस्तरीय रिपोर्ट के अनुसार भारत के घरों में ताला नहीं लगाया जाता था और भारत में एक भी भीखमंगा नहीं था। प्रायः एक सौ सालों के ब्रिटिश राज में भारत के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में व्यभिचार और भ्रष्टाचार का जो उदय और प्रश्रय हुआ यह भी भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। राजा राम, राजा हरिश्चन्द्र, सम्राट अशोक और बादशाह अकबर सरीखे राजाओं के आदर्श वाले देश में ब्रिटिश शासन काल में जमींदारों, राजाओं, महाराजाओं के विलासिता पूर्ण जीवन के जो किस्से उजागर हुए हैं, वे उस काल में देश में हुए नैतिक अधोपतन के ही द्योतक हैं।

अठाहरवीं–उन्नीसवीं शताब्दी में मूलतः वाष्प संचालित इंजिन के आविष्कार से ब्रिटेन में जो औद्योगिक क्रांति आई उसने विश्व के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया। औद्योगिक उत्पादन में अभूतपूर्व विस्तार से दो समस्याएं उत्पन्न हुईं। एक तो उद्योगों के लिए कच्चे माल की कमी तथा दूसरा उत्पादित वस्तुओं की खपत। इन दोनों समस्याओं का एक ही निदान था – ऐसे देशों की खोज जो संसाधनों में समृद्ध और राजनैतिक रूप से कमजोर और असंगठित हो। ब्रिटेन के समीपवर्ती यूरोप के बहुत से विकसित देशों जैसे फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, हॉलैंड इत्यादि में भी औद्योगिक क्रांति आई और वे भी इन्हीं दो समस्याओं से जूझते हुए ऐसे ही देशों की खोज में हो गए। औद्योगिक क्रांति के साथ सतही और जल यातायात के साधनों में क्रांतिकारक परिवर्त्तन, मुख्यतः वाष्प चालित रेल इंजन और समुद्री जहाजों के निर्माण से ऐसे देशों की खोज में सहायता हुई। दक्षिण अमेरिका, अफ्रीका और एशिया के कुछ देश उनकी इस खोज के निशाना बने।

इस नैतिक अधोपतन के प्रमुख कारक के रूप में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में अन्तर्निहित भ्रष्टाचार है। 1910 में लिखित मुंशी प्रेमचंद की कहानी ''नमक का दारोगा'' इस अन्तर्निहित भ्रष्टाचार को बखूबी दर्शाता है। किस तरह एक सरकारी कानून के चलते तत्कालीन भारतीय समाज में तस्करी, घूसखोरी सरीखी कुरीतियां और विकृतियां पैदा होती हैं, किस तरह हमारी वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता इसकी शिकार होती हैं, मूर्धन्य साहित्यकार ने रोचक ढंग से इसका वर्णन किया है।

उल्लेखनीय बात यह है कि शासन–जनित ये कुरीतियां और विकृतियां शासन की नजर में किसी अपराध की श्रेणी नहीं आती थीं। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन में भ्रष्टाचार कोई अपराध नहीं था। जब पूरा शासन तंत्र ही शोषण, व्यवस्थित लूट और अनैतिकता का जनक और पोषक हो तो भ्रष्टाचार उस तंत्र का एक हिस्सा बन जाता है जिसके माध्यम से शोषण और लूट में सहयोगियों और सहायकों को दलाली और तोहफा दिया जाता था। उल्लेखनीय है कि औपनिवेशिक शासन काल में कोई भ्रष्टाचार निवारण कानून नहीं बना था, और भ्रष्टाचार सामान्य रूप से स्वीकार्य था।

15 अगस्त 1947 को जो स्वतंत्रता मिली, वह सिर्फ राजनीतिक स्वतंत्रता थी जिसके तहत ब्रिटिश संसद द्वारा भारतीय संसद को तत्कालीन औपनिवेशिक शासन व्यवस्था कायम रखते हुए सत्ता का हस्तांतरण हुआ। इस भारतीय संसद को देश के लिए अपना कानून, अपनी शासन व्यवस्था और अपना संविधान बनाने का भी अधिकार था और इस तरह यह देश की संविधान सभा–सह–संसद थी जिसका गठन औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के ही तहत तत्कालीन ब्रिटिश संसद द्वारा

भारत भेजे गए एक कैबिनेट मिशन के द्वारा सुझाए गए एक तरकीब के तहत किया गया था। इस तरकीब के अनुसार इस संविधान सभा–सह–संसद के सदस्य भारतीय जनता द्वारा बालिग मताधिकार, जसकी मांग कांग्रेस पार्टी सदा करती रही थी, के आधार पर निर्वाचित न होकर, तत्कालीन ब्रिटिश भारत के प्रदेशों की प्रदेश विधानसभा के सदस्यों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित हुए थे। प्रदेश विधान सभाओं के ये सदस्य औपनिवेशिक भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के तहत धर्म, सम्पत्ति और शिक्षा के आधार पर सीमित मताधिकार प्राप्त जनता के द्वारा निर्वाचित हुए थे। 1946 के प्रारंभ में हुए इस निर्वाचन में 28% प्रतिशत मताधिकार प्राप्त जनता ने ही चुनाव में भाग लिया था। इस तरह हम देखते हैं कि संविधान सभा के सदस्य एक सीमित और औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से अपेक्षाकृत लाभुक एवं जागरूक वर्गों का ही प्रतिनिधित्व करते थे। भारतीय जनता का वह विशाल वर्ग जो औपनिवेशिक शासन व्यवस्था से अंतिम रूप से शोषित और प्रताड़ित था, इस संविधान सभा में उनका प्रतिनिधित्व नगण्य था। इस संविधान सभा में भारतीय जनता के प्रतिनिधित्व की यह विकृति और भी बढ़ जाती है जब इसके अलावा इसके 30% सदस्य तत्कालीन भारत के भारतीय राजाओं द्वारा मनोनीत किए गए। यद्यपि इस संविधान सभा में तत्कालीन भारत के दिग्गज नेता, अंग्रणी स्वतंत्रता सेनानी और महात्मा गाँधी के शीर्ष अनुयायी भी सदस्य निर्वाचित हुए थे, इसके अधिकांश सदस्य संभ्रांत वर्गों से आते थे, जो औपनिवेशिक शासकों से तो मुक्ति चाहते थे लेकिन औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में न सिर्फ कोई खराबी नहीं देखते थे बल्कि इसके हिमायती भी थे। महात्मा गाँधी की इस दृढ़ अवधारणा में कि भारत की दुर्दशा औपनिवेशिक शासकों से नहीं, औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के चलते हुई है और भारत की स्वतंत्रता का लक्ष्य इस व्यवस्था से मुक्ति है, न कि अंग्रेजों से मुक्ति, संविधान सभा के सदस्यों में कोई आस्था नहीं थी, उनके शीर्ष अनुयायियों में भी इसमें अपूर्ण आस्था ही थी। स्वतंत्र भारत में उसी शासन व्यवस्था को कायम रखने में न सिर्फ निवर्तमान बिटिश सरकार बल्कि उस व्यवस्था के लाभुक भारत के कुछ शक्तिशाली वर्गों का भी निहित स्वार्थ था।

महात्मा गाँधी की दिव्यदृष्टि से प्रेरित उनकी अवधारणा में उनके अनुयायियों की अपूर्ण आस्था और इस निहित स्वार्थ के दुर्योग से एक तरफ तो हमारे संविधान में स्वतंत्र भारत में जनता की आकांक्षाओं को तो संविधान की प्रस्तावना में ही बखूबी व्यक्त किया गया, लेकिन दूसरी तरफ उन आकांक्षाओं को फलीभूत करने और जमीन पर उतारने के लिए एक सर्वथा अनुपयुक्त तंत्र को अपना लिया गया। स्वतंत्र भारत में भी वही शासन व्यवस्था अपना ली गयी जिसे सदियों पूर्व भारत को व्यवस्थित ढंग से लूटने के लिए और यहाँ के लोगों का नैतिक अधोपतन सुनिश्चित करने के लिए सात समुंदर पार से आए विदेशियों द्वारा थोपी गयी थी।

अतः स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि शासन व्यवस्था वही है जिसका भ्रष्टाचार अनिवार्य अंग था। औपनिवेशिक शासन में भारतीय उपनिवेश के शोषण का अधिकांश भाग औपनिवेशिक शासकों को जाता था और कुछ अंश शोषण के सहयोगी भारतीयों को भ्रष्टाचार के रूप में मिलता था। स्वतंत्र भारत में शोषण का माध्यम ही भ्रष्टाचार है, जिसके चलते भ्रष्टाचार बहुत व्यापक और विशालकाय हो गया है। औपनिवेशिक भारत में भ्रष्टाचार शासन व्यवस्था का स्वीकार्य अंग था, स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार शासन व्यवस्था का अभिन्न अंग तो है, लेकिन स्वीकार्य नहीं है, अपराध है। भ्रष्टाचार के इस स्वरूप को समझे बिना इस अपराध का कोई निवारण नहीं है, न जन आंदोलन से, न कानून से और न ही सत्ता परिवर्त्तन से। शासन व्यवस्था परिवर्त्तन ही इसका वास्तविक, प्रभावी और एकमात्र निदान है।

राष्ट्रीय काया में वर्त्तमान शासन व्यवस्था के रूप में भ्रष्टाचार का धुन लगा हुआ है, जो देश को निरंतर खोखला और निःशक्त बना रहा है। इस धुन को मिटा दीजिए, शासन व्यवस्था को बदल दीजिए, जैसा हमारे युगद्रष्टा राष्ट्रपिता ने शुरू से अंत तक कहा था, शासन से भ्रष्टाचार की संस्कृति मिट जाएगी, देश अपनी अंतर्निहित शक्ति प्राप्त कर लेगा, देश समृद्ध हो जायेगा, राष्ट्रीय कायाकल्प हो जायेगा।

भारत में भ्रष्टाचार के स्वरूप की व्यापकता

भारतीय जन मानस को भ्रष्टाचार की समस्या ने जितना उद्वेलित किया है, उतना संभवतः और किसी राष्ट्रीय समस्या ने नहीं – देश में व्याप्त गरीबी, गरीबी–अमीरी की बढ़ती खाई, सामाजिक अशांति और अंतर्विद्रोह या राजनीति में नैतिकता का घोर अधोपतन जैसी समस्याओं ने भी नहीं, यद्यपि ये समस्याएं भी कम महत्त्वपूर्ण या चिंतनीय नहीं हैं। इसका एक कारण तो यह है कि भ्रष्टाचार की समस्या देश के हर व्यक्ति को छूती है – धनात्मक रूप से, ऋणात्मक रूप से या उसकी मान्यताओं और मूल्यों पर आघात करके। कुछ लोग भ्रष्टाचार के चलते फलते–फूलते हैं या ऐसा दिखाई पड़ते हैं, भ्रष्टाचार के चलते प्रत्यक्ष रूप से कुछ लोग शोषित और प्रताड़ित होते हैं, और अप्रत्यक्ष रूप से सभी इस समस्या से कुप्रभावित होते हें क्योंकि भ्रष्टाचार के धन में उनके हिस्से का धन भी सम्मिलित है। क्रियात्मक रूप में तो भ्रष्टाचार घटित होने का अर्थ है कि राज्य के विभिन्न कार्यों के लिए जनता का जो पैसा राजकीय कोष में आना चाहिए या उस कोष में जनता का जो पैसा जमा है, उसका उपयोग उन कार्यों में न होकर कुछ व्यक्तियों के पास चला जाता है और ये व्यक्ति शासन से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हैं।

यद्यपि भ्रष्टाचार जीवन के हमारे मूल्यों और मान्यताओं पर सीधा आघात करता है, फिर भी भारतीय जीवन में भ्रष्टाचार इतनी आम बात है, भ्रष्टाचार का चलन इतना व्यपाक है, भ्रष्टाचार की इतनी गहराई और मात्रा है कि हम इसके सामने असहाय दीखते हैं, घुटने टेकते हुए मालूम पड़ते हैं। ऐसा क्यों न हो? इस पत्रिका के आलेख ''राष्ट्रीय काया में भ्रष्टाचार का घुन'' में समीक्षात्मक रूप से यह दिखलाया गया है कि भ्रष्टाचार तो हमारी शासन व्यवस्था का प्रायोजित और अभिन्न अंग है। जब तक यह व्यवस्था रहेगी, हम इससे निपटने में असहाय रहेंगे। और चूँकि हमारी मान्यताओं के बावजूद भ्रष्टाचार उस व्यवस्था का अभिन्न और अनिवार्य अंग है जो हमारे जीवन के विभिन्न आयामों को प्रभावित करता है, यह विभिन्न रूपों में राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त है। इस आलेख में हम भ्रष्टाचार के स्वरूप की इसी व्यापकता पर प्रकाश डालेंगें।

1. राजनीति पर प्रभाव– वर्त्तमान शासन व्यवस्था के शीर्ष पर वे लोग हैं, राजनीति जिनका पेशा है और चूंकि भ्रष्टाचार इस व्यवस्था का अभिन्न और अनिवार्य अंग है इसलिए भ्रष्टाचार की गंगोत्री राजनीति से अवतरित होती है। फलस्वरूप हमारे देश की राजनीति में

भ्रष्टाचार जीवन के हमारे मूल्यों और मान्यताओं पर सीधा आघात करता है, फिर भी भारतीय जीवन में भ्रष्टाचार इतनी आम बात है, भ्रष्टाचार का चलन इतना व्यपाक है, भ्रष्टाचार की इतनी गहराई और मात्रा है कि हम इसके सामने असहाय दीखते हैं, घुटने टेकते हुए मालूम पड़ते हैं। ऐसा क्यों न हो? इस पत्रिका के आलेख ''राष्ट्रीय काया में भ्रष्टाचार का घुन'' में समीक्षात्मक रूप से यह दिखलाया गया है कि भ्रष्टाचार तो हमारी शासन व्यवस्था का प्रायोजित और अभिन्न अंग है। जब तक यह व्यवस्था रहेगी, हम इससे निपटने में असहाय रहेंगे।

नैतिकता की जो गिरावट हुई है या हो रही है वह अभूतपूर्व है। हमारे देश की मानसिकता में जिस राजनीति का आदर्श राम राज्य है, सम्राट अशोक का राज्य है, बादशाह अकबर का राज्य है या हाल के दिनों में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में संचालित हमारे देश के स्वतंत्रता संग्राम में देश की राजनीति का जो स्तर था उसकी तुलना यदि हम आज की राजनीति से करें तो आसमान–जमीन का अंतर स्पष्ट है। यदि हम इस गिरावट का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि यह गिरावट स्वतंत्रता के बाद ही शुरू हुई है। यानी जब से हमारे देश की राजनीति वर्त्तमान शासन व्यवस्था, जो मूलरूप से औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ही है, से जुड़ी। और गणतंत्र भारत में इस गिरावट का क्रम लगातार जारी रहा है, चाहे कोई भी दल या गठबंधन सत्ता में रहा हो, या कोई भी राजनेता सत्ता के शीर्ष पर रहा हो। कांग्रेस नीत पिछली सरकार के भ्रष्टाचार से खिन्न और भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलनों से उद्वेलित जनता के वोट से जो अभी लोकसभा बनी है, उसके 34 प्रतिशत सदस्य के ऊपर आपराधिक मामले चल रहे हैं। यह प्रतिशत गणतंत्र भारत की हर लोकसभा में अपनी पिछली लोकसभा की तुलना में बढ़ा है। हर लोकसभा के सदस्यों की औसत आमदनी और सम्पत्ति अपनी पिछली लोकसभा के मुकाबले बढ़ती गई है और जो सदस्य एक से अधिक बार निर्वाचित हुए हैं वे पहले की तुलना में ज्यादा धनी हुए हैं और कुछ सदस्यों में तो यह बढ़ोत्तरी चौकाने वाली है। जनता आज हर राजनीतिकर्मी को हेय दृष्टि से देखती है, उसकी नजर में हर राजनीतिज्ञ गुनाहगार है। देश के लिए यह चिंतनीय बात है कि जिस राजनीति के ऊपर देश को दिशा देने और दशा सुधारने का दायित्व है इसकी यह अधोगति हो गयी है।

2. विकास पर प्रभाव– भारत जैसे विकासशील देशों को विकसित देशों की श्रेणी में आने के लिए एक लम्बा रास्ता तय करना है, विकास एक बहुत बड़ी चुनौती है। लेकिन भ्रष्टाचार के चलते देश इस चुनौती का सामना करने में नाकामयाब रहा है। भ्रष्टाचार का सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव विकास पर ही पड़ता है। इसका मुख्य कारण तो यह है कि जनता का जो पैसा विकास पर खर्च होना चाहिए, उसका अधिकांश भाग भ्रष्टाचार के माध्यम से अन्यत्र चला जाता है। इस संदर्भ में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी, जो भारतीय राजनीति की संस्कृति से अछूते थे, का यह बयान कि गाँवों के लिये दिल्ली से भेजा गया एक रूपया गाँव में 15 पैसा ही पहुँचता है, हमारी आँख खोलने के लिए महत्त्वपूर्ण है। हमारा विकास सिर्फ पैसों के इस विचलन से ही नहीं प्रभावित होता है। जिन पर विकास का दायित्व है उनके समय और प्रयास का अच्छा–खासा भाग भ्रष्टाचार को प्रायोजित करने, उसका प्रबंधन करने या उससे निपटने में ही चला जाता है।

यह ध्यान देने की बात है कि भ्रष्टाचार के लिए विकास एक बहुत उपयोगी और सुविधाजनक माध्यम है। यह देखा गया है कि जब भी और जहाँ भी विकास की गति तेज हुई है, उस समय और वहाँ भ्रष्टाचार भी उतना ही बढ़ा है। इस शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार नहीं तो विकास नहीं, या भ्रष्टाचार कम तो विकास कम। फल यह है कि आज विकास सिर्फ देश या राज्यों की राजधानियों और कुछ अन्य बड़े शहरों में ही दिखाई पड़ता है। देश के लाखों गाँव और उसमें रहने वाले देश के 70 प्रतिशत लोग आजादी के साठ सालों के बाद भी इक्कीसवीं सदी के विकास से सदियों और कोसों दूर हैं।

3. शिक्षा पर प्रभाव– आज के ज्ञान परिचालित वैश्विक समाज में किसी भी देश का अस्तित्व और भविष्य वहाँ की शिक्षा पर आधारित है। शिक्षा ज्ञान का माध्यम है। किसी देश में कैसी शिक्षा और कितनी व्यापक शिक्षा है, यही उस देश की दशा और दिशा तय करेगी। इसी दृष्टिकोण से देश की शिक्षा की समीक्षा की जानी चाहिए।

वर्त्तमान शासन व्यवस्था में, जिसमें भ्रष्टाचार उसका अभिन्न और अनिवार्य अंग है, कई बातों से देश की शिक्षा कुप्रभावित होती है। पहली बात तो यह है कि देश के विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न रूपों में जनता का जितना पैसा उसके पॉकिट से निकलता है, भ्रष्टाचार के कारण उसका कुछ अंश ही राष्ट्रीय कोष में पहुँचता है। इसके चलते राष्ट्रीय

सुरक्षा, खाद्य, परिवहन इत्यादि मदों की अपेक्षा शिक्षा जैसे कम महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले विषय में बजटीय प्रावधान सर्वथा अपर्याप्त रहता है। दूसरी ओर, भ्रष्टाचार के चलते इस अपर्याप्त प्रावधान का भी पूरा उपयोग शिक्षा पर नहीं हो पाता।

भ्रष्टाचार के अलावा हमारी शिक्षा वर्त्तमान शासन व्यवस्था की अन्य विकृतियों का भी शिकार है। इस केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था में अभिभावकों की कोई प्रभावी भूमिका नहीं होने से स्कूली शिक्षा की गड़बड़ियों और कमियों का कोई निदान नहीं होता। फलस्वरूप वे निजी शिक्षा के विकल्प की ओर जाने को बाध्य होते हैं। वर्त्तमान शासन व्यवस्था की आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में प्रारंभिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक में निजी क्षेत्र को आने के लिए काफी बढ़ावा मिल रहा है। निजी क्षेत्र हमेशा मुनाफा प्रेरित होता है – माँग और पूर्त्ति के सिद्धांत पर आधारित। शिक्षा में निजी क्षेत्र के फलने–फूलने के लिए भ्रष्टाचार परक शासन व्यवस्था बहुत अनुकूल है। आर्थिक सुधारों के नाम पर भारत में लायी गयी उदारीकृत, निजीकृत और वैश्वीकृत आर्थिक व्यवस्था में आज जो नौकरियां सृजित हो रही हैं वे अधिकांशतः देश के विशाल बाजार के दोहन के लिए सक्रिय बहुराष्ट्रीय और देश की बड़ी कंपनियों के मानव संसाधन की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए हैं। हमारी शिक्षा का प्रारूप भी उसी के अनुकूल हो रहा है। देश की प्रतिभा भी इसी दोहन के लिए प्रयुक्त हो रही है। देश का काफी पैसा लगाकर संचालित होनेवाले उच्चस्तरीय संस्थानों में जो भारतीय प्रतिभा संवारी और निखारी जाती है, इसका उपयोग देश के विकास में न होकर उन कंपनियों के माध्यम से देश के दोहन में हो रहा है। जिस तरह से औपनिवेशिक भारत की शिक्षा व्यवस्था औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के संचालन के लिए आवश्यक विभिन्न स्तरों के प्रशासक, डाक्टर, इंजीनियर, वकील, क्लर्क, चपरासी पैदा करने के लिए प्रारूपित थी, उसी तरह देश की वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था नये आर्थिक साम्राज्यवाद की जरूरतों को पूरा करने के लिए कार्यशील हो रही है। शिक्षा में निजी क्षेत्र की भूमिका इसके लिए बहुत अनुकूल है। इस शिक्षा व्यवस्था से उत्कृष्ट वैज्ञानिक, इंजीनियर, अर्थशास्त्री, राजनीतिशास्त्री, समाजशास्त्री, साहित्यशास्त्री या राष्ट्रीय जीवन के अन्य क्षेत्रों में ज्ञानी पैदा होने की उम्मीद नहीं कर सकते। यह गौर करने की बात है कि स्वतंत्र भारत में, जो दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा देश है, एक भी भारतीय भारत में रहकर किए गए अध्ययन या शोध के आधार पर किसी भी विषय में नोबेल पुरस्कार नहीं पा सका है। यह उस देश के लिए शर्मनाक और दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है जिसका इतिहास ही शुरू होता है ज्ञान से।

शिक्षा की इस दुःस्थिति के लिए इस शासन व्यवस्था और इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की बहुत बड़ी भूमिका है।

4. स्वास्थ्य पर प्रभाव– जिस तरह इस शासन व्यवस्था और इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की वजह से हमारे देश की शिक्षा की दुःस्थिति है, उसी तरह और उन्हीं कारणों से देश में स्वास्थ्य की भी दुःस्थिति है। भ्रष्टाचार के फलस्वरूप राष्ट्रीय कोष में कम कर–संग्रह, स्वास्थ्य के लिए अपर्याप्त बजटीय प्रावधान और जनता तक स्वास्थ्य सेवा का लाभ और भी असंतोषजनक रूप से पहुँचना – इस शासन व्यवस्था में स्वास्थ्य की यही गति और नियति है। निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवा, जो धनार्जन के लिए की जाती है, की शरण में जाने के लिए जनता मजबूर होती है। तथाकथित आर्थिक सुधार के नाम पर लायी गयी व्यवस्था में स्वास्थ्य सेवा मुनाफा प्रेरित व्यवसाय का एक आकर्षक क्षेत्र बन गया है।

अतः शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार जैसी विकृतियों ओर प्रतिकूलताओं तथा उनके बीच उभरती आर्थिक व्यवस्था के फलस्वरूप देश की स्वास्थ्य सेवा, जो जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, की स्थिति चिंतनीय है।

5. राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव– हमारे सैन्य मामलों में इस शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार की संस्कृति के प्रभाव की पहचान काफी पुरानी है। यद्यपि औपनिवेशिक शासन में कई विभागों की कार्य संस्कृति में भ्रष्टाचार स्वीकार्य रूप से विद्यमान था, द्वितीय विश्व युद्ध के समय सैन्य कार्यों के लिए सामानों की आपूर्ति में भ्रष्टाचार इतने स्पष्ट रूप से कार्यशील हुआ कि 1941 में इसकी रोकथाम के लिए विशेष पुलिस स्थापना की श्रृष्टि की गयी थी। भारत की अंतरिम सरकार में भ्रष्टाचार को अपराध की श्रेणी में चिन्हित करने के लिए जो पहला कानून ''दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना कानून 1946'' के नाम से बना वह इसी का विस्तार था। राजनीतिक स्तर पर स्वतंत्र भारत का भ्रष्टाचार का जो पहला चर्चित घोटाला 1948 में हुआ वह सैन्य बलों के लिए जीपों की खरीद से सम्बंधित था। उसके बाद तो देश की सुरक्षा के लिए खरीद किए गए बोफोर्स जैसे कई ऐसे मामलों में उच्चस्तरीय घोटालों का पर्दाफाश हुआ जिसने देश की राजनीति पर गंभीर प्रभाव डाला। स्पष्ट है कि राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बंधित मामलों में नीचे के स्तरों पर भी भ्रष्टाचार घटित होता है।

भ्रष्टाचार का प्रभाव राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बंधित कई रूपों में होता है। एक तो भ्रष्टाचार के फलस्वरूप सैन्य आयुधों और सम्बंधित वाहनों और उपकरणों की गुणवत्ता से समझौता होता है। दूसरे, इन आयुधों, वाहनों और उपकरणों के उत्पादन में देश को आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास में शिथिलता आती है। तीसरे, हमारा देश एक अंतर्राष्ट्रीय कुचक्र में फँस जाता है। इन आयुधों, वाहनों और उपकरणों के निर्माता देश ये चाहते हैं कि हमें इन की आवश्यकता होती रहे और हमारी उन पर निर्भरता बनी रहे। इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में देशों के पारस्परिक विरोध और फलस्वरूप अशांति कायम रखने में ऐसे देशों का एक निहित स्वार्थ हो जाता है। हमारा देश भी इस अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का शिकार है। इन सबसे ऊपर सिर्फ सैन्य मामलों में ही नहीं, देश में व्याप्त भ्रष्टाचार की संस्कृति का प्रभाव हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा पर अप्रत्यक्ष लेकिन गंभीर रूप से पड़ता है। देश के लिए कष्ट सहन करना और अपनी जान तक न्यौछावर कर देना एक जज्बा होता है, एक भावना होती है। यह भावना जितनी सुदृढ़ रहेगी, हमारा देश उतना ही सुरक्षित रहेगा। भ्रष्टाचार की संस्कृति इस भावना को मन्द कर देती है।

6. व्यापार पर प्रभाव– भारत में व्यापार और शासन व्यवस्था में अंतर्निहित भ्रष्टाचार का अन्योन्याश्रय का सम्बंध है। देश में विभिन्न रूपों में और विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार की जितनी राशि संलिप्त है उसका अधिकांश भाग व्यापार के माध्यम से आता है। इस माध्यम में दोनों सम्बद्ध लोगों – व्यापार से जुड़े और शासन से जुड़े – का भ्रष्टाचार में निहित स्वार्थ है। जो राशि राष्ट्रीय कोष में जाना चाहिए, वह इन लोगों में भ्रष्टाचार के माध्यम से बँट जाता है। इसमें दोनों की जीत है, हार है तो वह जनता की है, देश की है। देश और इसकी जनता उस राशि से, जो उसने ही विभिन्न रूपों में दिया है, होने वाली सेवाओं के लाभ से वंचित कर दी जाती है। और देखें तो भ्रष्टाचार की इस सर्वव्यापी संस्कृति से व्यापार भी फलता फूलता नहीं है। प्रायः हर व्यापारी अपने व्यापार का हिसाब किताब दो तरह के बही खातों से करता है। दो नम्बर का खाता वह वास्तविक लेन–देन के आधार पर अपने व्यापार की वास्तविक गतिविधियों के आकलन के लिए करता है और एक नम्बर का खाता फर्जी लेन–देन के आधार पर तैयार करता है जिसके आधार पर वह कर देता है। इस तरह जो कर वंचना होती है उसका लाभ व्यापारी और सरकारी अधिकारी बाँट लेते हैं। यही कर वंचना काला धन के नाम से जाना जाता है, जो तीन तरह से उपयुक्त होता है। देश का बहुत सा अनैतिक और गैर कानूनी धंधा काला धन से ही चलता है। दूसरा, काला धन का एक भाग देश के बाहर स्विस और इस तरह के अन्य बैंकों में जमा किया जाता है। तीसरा, देश के व्यापार का बड़ा हिस्सा काले धन से चलता है जिसे दो नम्बर का व्यापार कहा जाता है। अनुमान है कि देश में दो नम्बर का व्यापार कुल वास्तविक व्यापार का पचास प्रतिशत है। इस दो नम्बर के व्यापार से देश, समाज और जनता की जो हानि होती है, वह तो होती ही है, व्यापार और व्यपार से जुड़े लोगों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जो सोच और प्रयास व्यापार और इसके दायरे को बढ़ाने में लगना चाहिए, वह दो नम्बर के व्यापार को मैनेज करने और इसे सरकारी कर पाश से बाहर रखने में लग जाता है। इसके चलते व्यापार से जुड़े लोग मानसिक तनाव में रहते हैं और सामाजिक स्तर पर हीनता की भावना से भी ग्रस्त रहते हैं। यदि शासन व्यवस्था और देश में भ्रष्टाचार की संस्कृति समाप्त हो जाती, तो देश में व्यापार का आकार और दायरा बढ़ता, देश अतरिक्त कर संग्रह से लाभान्वित होता, जनता विस्तारित व्यापार और उन्नत जन सेवाओं से लाभान्वित होती और व्यापार से जुड़े लोग विस्तारित व्यापार, मानसिक तनाव से मुक्ति और समाज में यथोचित स्थान और सम्मान पाने से लाभान्वित होते।

7. विधि व्यवस्था पर प्रभाव– देश में बिगड़ी हुई विधि व्यवस्था में

भ्रष्टाचार के अलावा हमारी शिक्षा वर्त्तमान शासन व्यवस्था की अन्य विकृतियों का भी शिकार है। इस केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था में अभिभावकों की कोई प्रभावी भूमिका नहीं होने से स्कूली शिक्षा की गड़बड़ियों और कमियों का कोई निदान नहीं होता। फलस्वरूप वे निजी शिक्षा के विकल्प की ओर जाने को बाध्य होते हैं। वर्त्तमान शासन व्यवस्था की आर्थिक नीतियों के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में प्रारंभिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक में निजी क्षेत्र को आने के लिए काफी बढ़ावा मिल रहा है। निजी क्षेत्र हमेशा मुनाफा प्रेरित होता है – माँग और पूर्त्ति के सिद्धांत पर आधारित। शिक्षा में निजी क्षेत्र के फलने–फूलने के लिए भ्रष्टाचार परक शासन व्यवस्था बहुत अनुकूल है।

हमारी शासन व्यवस्था में निहित भ्रष्टाचार की संस्कृति का बहुत बड़ा हाथ है। एक तो देश और समाज में संगठित रूप से जितने भी अनैतिक, असामाजिक और गैर कानूनी कार्य किए जाते हैं वे काले धन से ही सम्पोषित होते हैं और, जैसा ऊपर वर्णित किया गया है, काला धन भ्रष्टाचार से ही पैदा होता है। हत्या और बलात्कार जैसी जघन्य कृतियों को नियंत्रित करने में हमारी असफलता और प्रकारांतर से इन्हें बढ़ावा देने में भी शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार का बहुत बड़ा हाथ है। साम्प्रदायिक हिंसा और जातीय संघर्षों के घटित होने के पीछे भी भ्रष्टाचारपरक इस शासन व्यवस्था की बड़ी भूमिका है। ऐसी शासन व्यवस्था वोट बैंक की राजनीति को जन्म देती है और ऐसी राजनीति समाज को बाँटने से ही चलती है। ऐसी राजनीति को चलाने में साम्प्रदायिक और जातीय उन्माद को उभारने और बढ़ाने की रणनीति कारगर समझी जाती है। स्वतंत्रता के पूर्व औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने ऐसी ही राजनीति को जन्म दिया और सम्पोषित किया जिसकी परिणति देश के विभाजन के रूप में हुई। वही शासन व्यवस्था आज हमारे देश में भी वही कर रही है, जिसके चलते विधि व्यवस्था की समस्या उत्पन्न हो रही है।

भ्रष्टाचार मुक्त शासन व्यवस्था का इस देश, जिसके संस्कार में सर्वधर्म समभाव, सामाजिक समरसता और उच्च नैतिकता का आदर्श है, की विधि व्यवस्था पर चमत्कारिक प्रभाव होगा।

8. आर्थिक स्थिति पर प्रभाव– वर्त्तमान शासन व्यवस्था में, जो मूलतः शोषण को व्यवस्थित और सुगम बनाने वाली औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ही है, शोषण का माध्यम भ्रष्टाचार है। शोषण की तरह भ्रष्टाचार का अंतिम शिकार देश की विशाल निम्नवर्गीय जनता है। मध्यम और उच्च वर्ग के लोग इस भ्रष्टाचार के, कम या ज्यादा, लाभुक ही हैं। अतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था की तरह भ्रष्टाचार आधारित देश की वर्त्तमान शासन व्यवस्था भी व्यापक गरीबी की जनक है। इस व्यवस्था में गरीबी कभी भी नहीं मिटाई जा सकती। सत्ता के लिए वोट बैंक की राजनीति को बढ़ावा देने वाली इस शासन व्यवस्था में गरीबों को कानूनों के जरिये कुछ सुविधा या अधिकार जैसे रोजगार, शिक्षा या खाद्य के अधिकार दिए जाते हैं। ये सुविधा या अधिकार कितना गरीबों तक पहुँच पाते हैं और कितना व्यवस्था और इसके भ्रष्टाचार को समर्पित हो जाते हैं, यह तो शोध का विषय है। लेकिन इतना निश्चित है कि ऐसे कानूनों से गरीबी कदापि नहीं मिट सकती। इसी शासन व्यवस्था से आर्थिक सुधार के नाम पर उपजी और देश पर थोपी गई अर्थव्यवस्था से देश में गरीबी–अमीरी की खाई चौड़ी होती गयी है। भ्रष्टाचार ने इस प्रक्रिया को और तेज कर दिया है।

अतः भ्रष्टाचार आधारित इस शासन व्यवस्था में हम न कभी गरीबी मिटा सकते हैं और न गरीबी–अमीरी की चौड़ी होती खाई की कमी कर सकते हैं। यह शासन व्यवस्था गरीबी को बनाए और पोषित करने वाली और उससे उपजी आर्थिक व्यवस्था गरीबी अमीरी की खाई को बढ़ाने वाली है।

9. भ्रष्टाचार निवारक कानूनों पर प्रभाव– जैसा कि पहले कहा गया है, भ्रष्टाचार औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का अनिवार्य और अभिन्न अंग था जिसके माध्यम से शोषण में सहयोगी एवं सहायक भारतीयों को पारिश्रमिक, प्रलोभन तथा तोहफा दिया जाता था। अतः उस व्यवस्था में भ्रष्टाचार कोई अपराध नहीं था। अपराधों से निपटने वाली प्रशासकीय भारतीय दंड संहिता में भ्रष्टाचार का कोई उल्लेख नहीं था। स्वतंत्रता के बाद देश में भ्रष्टाचार आधारित वही शासन व्यवस्था रही लेकिन भ्रष्टाचार अब स्वीकार्य नहीं रहा और अपराध की श्रेणी में आ गया। जो व्यवस्था भ्रष्टाचार को जन्म देती ओर पोषण करती है, उसी व्यवस्था में अपराध की तरह इससे निपटना भी है। इस आंतरिक विरोधाभास से निपटने के लिए कानून का सहारा लिया जाने लगा। लेकिन हर भ्रष्टाचार संबंधी कानून को अपर्याप्त पाया गया और फिर उस अपर्याप्तता से निपटने के लिए नये कठोर कानून बनाए गये और वर्तमान अन्य कानूनों में कड़े प्रावधान किए गए। दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना ऐक्ट (1946), केन्द्रीय जाँच ब्यूरो (1963), केन्द्रीय सतर्कता आयोग (1964), भ्रष्टाचार निवारक कानून (1988) और काला धन निवारक कानून (2002) बने। फिर राष्ट्रीय जीवन के जिन–जिन क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की सम्भावना पाई गयी, उन क्षेत्रों के लिए बने कानूनों में भ्रष्टाचार सम्बंधी कड़े से कड़े प्रावधान किए गए, यथा आयकर कानून और जन प्रतिनिधित्व कानून में। इन कानूनों और कानूनी प्रावधानों के बावजूद देश में भ्रष्टाचार अबाध गति से बढ़ता ही गया है। स्थितियों से क्षुब्ध और आक्रोशित जनता ने भ्रष्टाचार विरोधी जन आंदोलन किए। उन्हें कहा गया कि भ्रष्टाचार बढ़ा क्योंकि कानून पूरे सख्त नहीं थे, सख्त कानून समस्या का समाधान होगा। प्रायः इसी के अनुरूप 2013 में लोकपाल और लोकायुक्त कानून पास हुआ। अभी यह कानून कार्यशील नहीं हुआ है, प्रारंभिक प्रक्रियाओं में ही अटका हुआ है। इस नये कानून में एक नया ब्यूरोक्रेटिक तंत्र

कायम करने का प्रावधान है जो वर्त्तमान शासन तंत्र, ऊपर से नीचे तक, पर नजर रखेगा और कहीं भी गड़बड़ी पाने पर उस पर कार्रवाई करने का उसे पूरा अधिकर होगा। इस कानून की पूर्वधारणा यह है कि यह नया तंत्र स्वयं भ्रष्टाचार से मुक्त रहेगा। चूँकि यह नया तंत्र इसी शासन व्यवस्था का अंग होगा, यह पूर्वधारणा तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती। वर्त्तमान शासन व्यवस्था से अलग इस नये तंत्र के किसी अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती क्योंकि यह लोकतंत्र का सरासर हनन हो जायेगा कि एक लोकतांत्रिक सरकार पर जनता नहीं बल्कि एक गैर लोकतांत्रिक तंत्र नजर रेखगा। जनता हाशिए पर रहेगी, और भ्रष्टाचार का बाजार चलता रहेगा। पहले भी ऐसा ही हुआ है।

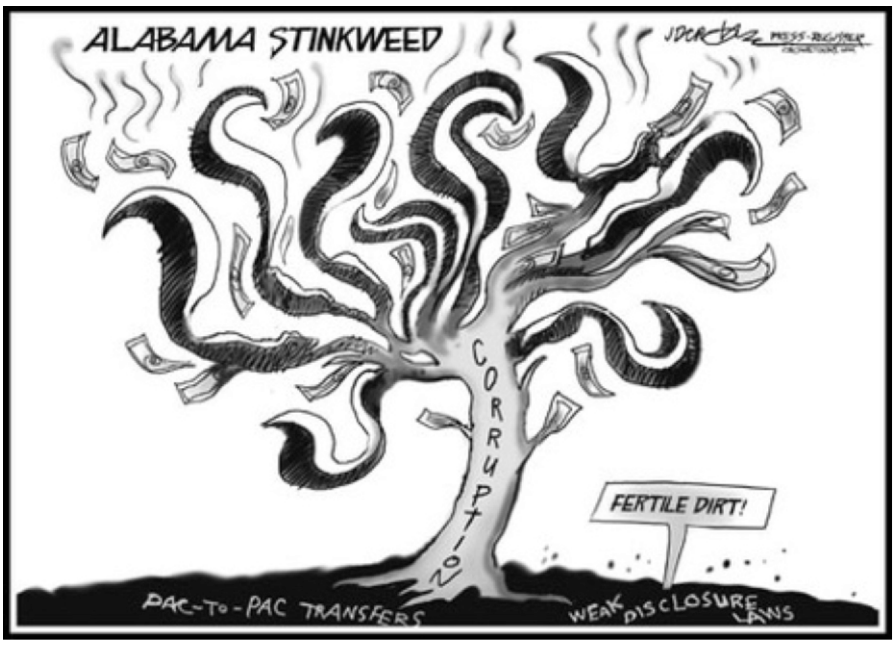

10. भ्रष्टचारियों पर प्रभाव– भारत और इसकी शासन व्यवस्था के संदर्भ में भ्रष्टचारियों पर भ्रष्टाचार के प्रभाव की समीक्षा करना अर्थहीन नहीं होगा। आचार, विचार और व्यवहार की शुद्धता भारत की संस्कृति का अंग रहा है। भारत के गाँवों, बस्तियेां और घरों में रामायण, गीता, महाभारत और अन्य धार्मिक ग्रंथों के आख्यान और संदेश पढ़े, सुने और सुनाए जाते हैं। महात्माओं और संतों के प्रवचन लोग तन्मय होकर सुनते हैं। जीवन के मूल्यों और मान्यताओं के निर्धारण में इन सबकी अहम भूमिका है। जिस भ्रष्टाचार की हम चर्चा कर रहे हैं वह भारत में औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के साथ आया। भारत को व्यवस्थित ढंग से लूटने, शोषण करने और साथ–साथ यहाँ के लोगों का नैतिक पतन सुनिश्चित करने के लिए इस देश पर थोपी गयी इस शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार इसका अभिन्न अंग था, और यह कोई अपराध नहीं था। जो भारतीय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस शासन व्यवस्था से जुड़े, वे इस लूट के सहभागी और सहायक हुए और वे भ्रष्टाचार या अन्य रूपों से इस लूट के अल्पांश के भागीदार भी बने। यद्यपि ये लोग शासन व्यवस्था में अपनी भागीदारी को किसी अपराध के रूप में नहीं देखते थे, महात्मा गाँधी ने अपने ऊपर लगाए गये देश द्रोह के मुकदमे की सुनवाई के अवसर पर अंग्रेज जज के समक्ष जो 1922 में अपना बयान दिया था उसमें उन्होंने अनैतिक शासन व्यवस्था में सहयोगी भारतीयों के इस अपराध की ओर इंगित किया था। स्वतंत्रता के बाद देश में मूलतः वही शासन व्यवथा अपना ली गयी, लेकिन भ्रष्टाचार अब अपराध की श्रेणी में आ गया। फलस्वरूप देश में एक विडम्बना पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गयी है। एक तरफ तो यह शासन व्यवस्था भ्रष्टाचार को जन्म और पोषण देती है, दूसरी ओर इसे कानूनन अपराध घोषित कर कानून के माध्यम से भ्रष्टाचार से निपटने का प्रयास करती है। इस स्थिति में इस शासन व्यवस्था से सम्बद्ध जो भी व्यक्ति ऐसा कार्य करता है जो कानून की परिभाषा में भ्रष्टाचार की श्रेणी में आता है, वह अपराधी है। ऐसे अपराधियों का कुछ ही प्रतिशत व्यक्ति कानून की गिरफ्त में आते हें और ऐसे गिरफ्त में आए व्यक्तियों का कुछ प्रतिशत सजा पाते हैं। इस तरह इस शासन व्यवस्था से सम्बद्ध चार तरह के व्यक्ति हैं। एक तो वे हैं जो ऐसा कोई भी काम नहीं करते जो भ्रष्टाचार की कानूनी परिभाषा मे आता है। चूँकि इस शासन व्यवस्था में अधिकारियों एवं कर्मचारियों की एक श्रृंखला होती है और हर अधिकारी या कर्मचारी इस श्रृंखला की एक कड़ी मात्र होते हैं, ऐसे व्यक्ति इस तंत्र में असहज महसूस करते हैं या मानसिक तनाव में रहते हैं। दूसरे वे हैं जो जाने अनजाने भ्रष्टाचार तो करते हैं लेकिन किसी न किसी तरह कानून की गिरफ्त में नहीं आते। ऐसे व्यक्ति सांसारिक रूप से सफल व्यक्ति कहे जाते हैं, लेकिन कहीं न कहीं अपराध बोध से ग्रस्त रहते हैं। उनका परिवार, उनका नजदीकी समाज और भ्रष्टाचार में सहभागी लोगों को उनकी सांसारिक सफलता का रहस्य मालूम रहता है और उनकी नजरों में वे आदर के पात्र नहीं रहते, उनके बच्चों की नैसर्गिक नैतिकता भी प्रभावित होती

है। तीसरे तरह के वे लोग हैं जो भ्रष्टाचार करते हैं और कभी न कभी कानून की गिरफ्त में आ जाते हैं, उनके अपराध की कृति जग जाहिर हो जाती है। ऐसे लोग अंत मे उस गिरफ्त से बाहर आने में सफल भी होते हैं, तो भी उनकी सामाजिक मर्यादा में कमी रहती ही है। शासन व्यवस्था से जुड़े चौथे तरह के वे लोग हैं जो कानून परिभाषित भ्रष्टाचार के अपराध के लिए सजा पाते हैं। वैसे लोगों का जीवन दयनीय हो जाता है। प्रश्न है कि इस शासन व्यवस्था से जुड़े हर तरह के लोग जो व्यक्तिगत रूप से, पारिवारिक रूप से, सामाजिक रूप से या कानूनी रूप से सजा पाते हैं, उसका दोषी कौन है? क्या वे लोग जो उस व्यवस्था से अपने जीवन यापन के लिए या लोक सेवा के लिए जुड़े या यह शासन व्यवस्था जो भ्रष्टाचार को जन्म देती है, प्रोत्साहित करती है, और जाने–अनजाने इससे जुड़े लोग इसका शिकार होते हैं?

जब हम इस शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार की बात करते हैं तो एक यक्ष प्रश्न है कि जब यह शासन व्यवस्था ही जनता के शोषण पर आधारित है तो इस व्यवस्था से जुड़े सभी लोग उस शोषण के भागीदार हो गए और इस तरह नैतिकता के आधार पर अपराधी हो गए, चाहे वे इस व्यवस्था के अन्तर्गत बनाए हुए कानून के अनुसार अपराधी हों या न हों। इस सम्बंध में महात्मा गाँधी का वह पत्र, जो उन्होंने 1930 में तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड इर्विन को लिखा था, उद्धरणीय है। उन्होंने लिखा था कि ''भारत पर थोपी गई औपनिवेशिक सरकार दुनिया की सबसे महँगी सरकार है जिसका भार वहन भारत की गरीब जनता करती है'' उदाहरण के तौर पर उन्होंने इंगित किया था कि ''जहाँ ब्रिटेन के प्रधानमंत्री का वेतन वहाँ की जनता की औसत आमदनी का 90 गुणा है, भारत के वाइसराय का वेतन यहाँ की जनता की औसत आमदनी का 5000 गुणा से ज्यादा है''। आज भी भारत के शासन का खर्च यहाँ की जनता की आर्थिक स्थिति के मद्देनजर काफी महँगी है। उदाहरण के तौर पर जहाँ अमेरिका के राष्ट्रपति का वेतन वहाँ के निवासियों की औसत आमदनी का दस गुणा है, भारतीय राष्ट्रपति का वेतन भारतीय जनता की औसत आमदनी का पचास गुणा है। वैसे भी, सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के कुल वेतन और आम भारतीय जनता की आय में कोई सामंजस्य नहीं रहता है और न ही वेतन वृद्धि पर विचार करते समय इस सामंजस्य का ध्यान रखा जाता है। और भार अंततः जनता ही पर पड़ता है। यद्यपि यह बात शासन में भ्रष्टाचार के लिए कानूनी रूप से अप्रसांगिक है, लेकिन नैतिक रूप से अवश्य विचारणीय है।

11. राष्ट्रीय नैतिकता पर प्रभाव– जिस तरह एक व्यक्ति का नैतिक स्वरूप होता है, जिसके आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति रहती है, उसी तरह किसी राष्ट्र का भी नैतिक स्वरूप होता है, जिसके आधार पर वैश्विक समुदाय में उस राष्ट्र का स्थान बनता है। जब 1833 में भारत भ्रमण कर ब्रिटिश सांसद लॉर्ड मेकाले ने अपनी रिपोर्ट में यह लिखा कि भारत के घरों में उन्होंने कोई ताला लगा हुआ नहीं पाया तो वह तत्कालीन भारत की नैतिकता को ही वर्णित कर रहे थे। भारतीय नैतिकता के इस उच्च स्तर को वे भारत में उपनिवेशवाद के स्थायित्व के लिए खतरा समझ रहे थे और इसीलिए भारत में ऐसी शासन व्यवस्था की उन्होंने अनुशंसा की थी जो उपनिवेश के शोषण के साथ–साथ यहाँ के लोगों का नैतिक पतन भी सुनिश्चित करे। इस अनुशंसा पर आधारित भारत की औपनिवेशिक शासन व्यवस्था अपने दोनों उद्देश्यों की पूर्त्ति में काफी सफल रही। स्वतंत्र भारत में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना लेने से इस व्यवस्था से सम्बद्ध लोगों के नैतिक पतन का सिलसिला स्वतंत्र भारत में भी चलता रहा। आज देश का राष्ट्रीय नैतिक स्वरूप विकृत हो गया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत का भ्रष्टाचार बोध सूचकांक काफी नीचे ही रहता है। इसमें शासन व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की बड़ी भूमिका है। भारत के आम लोगों की धारणा है कि शासन से जुड़े अधिकांश व्यक्ति – नेता, अफसर, कर्मचारी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। ऐसी भावना, वास्तविकता चाहे जो भी हो, सर्वथा राष्ट्रहित में नहीं है। लोकतंत्र में जनता का यदि शासन के प्रति विश्वास और सम्मान की भावना नहीं हो तो विधि–व्यवस्था, विकास इत्यादि शासकीय कार्य सुसाध्य नहीं रहते। इसी तरह, यदि विश्व समुदाय में भारत की राष्ट्रीय नैतिकता का निम्न स्तरीय होने का बोध हो तो भारत, जो हजारों सालों की समृद्ध संस्कृति अपने में समाहित किए हुए हैं और जो गांधी का देश है, अपनी प्रतिष्ठा खो देगा। यह विश्व और भारत दोनों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।

इस तरह हम देखते हैं कि भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार कोई अलग–थलग समस्या नहीं है। यह स्वयं तो शासन व्यवस्था के अभिन्न और अनिवार्य अंग के रूप में विद्यमान है और यह राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न महत्त्वपूर्ण आयामों को कुप्रभावित कर रहा है। इसको समूल नष्ट किए बिना राष्ट्र कदापि स्वस्थ और सशक्त नहीं हो सकता। इसके लिए शासन व्यवस्था परिवर्त्तन अनिवार्य और अत्यावश्यक है।

हर बुराई की जड़ भ्रष्टाचार नहीं

मार्क टुली

(दिसम्बर 2013 को दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित लेख का साभार पुनः प्रकाशन)

आम आदमी पार्टी का उदय और कांग्रेस का पतन, इसने भारतीय राजनीति को बहुत रोचक बना दिया है। लेकिन क्या यह बदलाव भारत के इतिहास में एक नया मोड़ ला पाएगा? मुझे इसमें संदेह है। आम चुनावों को लेकर उत्साह का माहौल है। इसके जो भी नतीजें आएं, पर डर यह है कि नई सरकार के बनते ही सबकुछ पुराने ढर्रे पर लौट आएगा।

यूपीए सरकार ने सूचना के अधिकार अधिनियम और अब मजबूरन लोकपाल कानून बनाकर भ्रष्टाचार मिटाने के कदम जरूर उठाए, लेकिन आगे की कार्रवाई के लिए बहुत कम या एकदम नहीं काम हुए, जबकि इसकी जरूरत पड़ती है। भ्रष्ट लोगों के खिलाफ जांच कराना और उन्हें सजा दिलाना, दोनों काम लाल फीताशाही में बंधकर रह गए, सुस्त कानूनी प्रक्रिया में उलझ गए और मीडिया भी इन्हें भूल गया। मीडिया द्वारा हर रोज नये घोटाले या घपले की खोज ने यह गलत धरणा बना दी है कि भ्रष्टाचार ही सभी बुराइयों की जड़ है और इसके उन्मूलन से भारत सुशासन का नया मॉडल बन जाएगा। घोटालों ने राजनेताओं की छवि इतनी खराब कर दी है कि सौम्य व्यवहार वाले इंसान, जैसे कि गोपाल गांधी तक राजनेताओं के खिलाफ सख्त भाषा का इस्तेमाल करते हैं, उन्हें ''खराब'' और उनके व्यवहार को ''घिनौना'' बताते है। इसलिए सभी दलों के घोषणा–पत्रों में भ्रष्टाचार उन्मूलन प्रमुखता से रहेगा।

लेकिन भ्रष्टाचार पर सारा ध्यान इस तथ्य पर परदा डालता है कि कुशासन के कई लक्षणों में यह अकेला ही है। अमेरिकी अर्थशास्त्री लैंट प्रीचेट ने एक नया मुहावरा गढ़ा है, 'भारत एक विफल होता देश नहीं, घिसटता हुआ देश है, ऐसा क्यों? क्योंकि, नीतियों को लागू करने की भारत की क्षमता कमजोर है – पुलिस में, कर उगाही में, ऊर्जा में, जलापूर्ति में – लगभग सभी दैनिक सेवाओं में। वहां भारी अक्षमता, उदासीनता और भ्रष्टाचार है।' गौर करें कि भ्रष्टाचार सबसे आखिरी में है। साफ है कि उनकी नजर में यह सबसे घातक लक्षण नहीं है।

ऐसे भी लोग हैं, जिनका सामान्य नजरिया है कि कुशासन ई–गवर्नेंस और आधार कार्ड से ठीक हो जाएगा। चंडीगढ़ में जब एक सेमिनार में इस सवाल को आगे बढ़ाया गया था, तो वहां मैं मौजूद था। वहां ठहाके लग रहे थे, जब एक युवा पुलिस अधिकारी ने बताया कि ई–गवर्नेंस मददगार हो सकता है। मेरे पुलिसकर्मी अपना हफ्ता ई–मेल द्वारा लेते हैं।' अकेले ई–गवर्नेंस से भारत को सुशासन नहीं मिल सकेगा।

जयप्रकाश नारायण ने भारतीय युवाओं की शक्ति को दिखाया था, लेकिन उनका आंदोलन जनता पार्टी सरकार से मोह–भंग के साथ खत्म हुआ। इसकी पुनरावृति न हो, इसके लिए आज युवाओं को यह समझने की जरूरत है कि उनका आंदोलन आम आदमी पार्टी के भ्रष्टाचार विरोधी संकीर्ण एजेंडे से कहीं आगे जाना चाहिए। उन्हें उस आंदोलन को पूरा करने के लिए अभियान चलाना चाहिए, जिसे उनके पुरखों ने स्वतंत्रता संग्राम के समय शुरू किया था। वह आंदोलन था, लंबे समय से कायम औपनिवेशिक विरासत से भारत को मुक्त करने का।

घोटालों का चिट्ठा खुलना और आम आदमी पार्टी का उदय, दोनों घटनाक्रमों ने एक उद्देश्य पूरा किया है, वह है व्यापक जागरूकता। विशेष रूप से आम लोगों के बीच यह बात पैठ चुकी है कि चीजें जिस तरह चल रहीं थीं, अब नहीं चल सकतीं। जयप्रकाश नारायण ने भारतीय युवाओं की शक्ति को दिखाया था, लेकिन उनका आंदोलन जनता पार्टी सरकार से मोह–भंग के साथ खत्म हुआ। इसकी पुनरावृति न हो, इसके लिए आज युवाओं को यह समझने की जरूरत है कि उनका आंदोलन आम आदमी पार्टी के भ्रष्टाचार विरोधी संकीर्ण एजेंडे से कहीं आगे जाना चाहिए। उन्हें उस आंदोलन को पूरा करने के लिए अभियान चलाना चाहिए, जिसे उनके पुरखों ने स्वतंत्रता संग्राम के समय शुरू किया था। वह आंदोलन था, लंबे समय से कायम औपनिवेशिक विरासत से भारत को मुक्त करने का।

सार्वजनिक संस्थाओं की बुरी हालत और पुराने व बेकार पड़ चुके कानून आज भी उस औपनिवेशिक विरासत को जिंदा रखे हुए हैं। इन संस्थाओं के कर्ता–धर्ताओं और कानून को अमल में लाने वाले लोगों का मनमिजाज महत्वपूर्ण है। लेकिन तथाकथित सिविल सर्वेंट (नौकरशाह) न तो सिविल (शिष्ट) हैं और न ही सर्वेंट (नौकर), बल्कि वे पहले के औपनिवेशिक शासकों जैसे हैं। घमंड से चूर कलक्टर से लेकर नीचे प्रखंड विकास पदाधिकारी तक, गांव वालों की नजर में ऐसे अधिकारी हैं, जो विकास की राह में बाधा बनाते हैं। बड़े आईपीएस अधिकारी से लेकर, जिनकी गाड़ियों पर झंडा लहराता है, एफआरआई लिखने से मना करने वाले थानेदार तक, ये सब स्वराज नहीं बल्कि राज के प्रतीक हैं।

इस चीज से नेहरू डरते थे। अपनी किताब 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में उन्होंने लिखा है, 'मालिक गोरे से सांवले न हों, बल्कि सचमुच में जनता का शासन हो, जो जनता द्वारा और जनता के लिए हो तथा इससे हमारी गरीबी और तंगहाली खत्म हो।' ऐसा लिखकर वे गांधी को याद करते हैं। मैं मानता हूं कि अगर ये दो समर्पित लोग आज के हिंदुस्तान में लौट आते, तो यह देखकर निराश होते कि भविष्य को लेकर उनके भय आज कैसे सच हो रहे हैं और गरीबी एवं तंगहाली को खत्म करने की मंशा से यह मुल्क कितना दूर होता जा रहा है। नेहरू और गांधी, दोनों यह महसूस कर चुके थे कि उपनिवेशवाद एक शासन प्रणाली से कहीं अधिक गहरा जख्म दे गया है, यह सेवा की नहीं, शासन की बात करता है। इसने अतीत के प्रति भारत के सम्मान को कम किया है। अपनी किताब 'राइटियस रिपब्लिक' में युवा भारतीय विद्वान लेखिका अनन्या वाजपेयी लिखती हैं कि राजनीति के आधुनिक रूप, जैसे बहुलतावाद, धर्मनिरपेक्ष समतावादी लोकतंत्र भारत को संरक्षित नहीं रखते, बल्कि सदियों पुरानी भारत की पुरानी विरासत भारत को संरक्षित बनाती है। आज यह विरासत महत्वहीन है और भारत डरा हुआ है कि इसमें धार्मिक तत्व है। लेकिन अनन्या यह बताती हैं कि स्वतंत्रता के पांच सबसे प्रभावी चिह्न अतीत से ही लिये गए थे। नेहरू ने भारत की सबसे पुरानी शक्ति को अपनी किताब 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में खोजा था तथा अशोक के सिंह एवं बुद्ध चक्र को नए राष्ट्र के प्रतीक के तौर पर चुना। गांधी के स्वराज और अहिंसा का भी पुराना इतिहास है।

अनन्या द्वारा बतायी गयी सदियों पुरानी विरासत युवाओं को एक नया दृष्टि प्रदान कर सकती है। यह दृष्टि युवाओं के सपनों को आंदोलित कर सकती है, उसे व्यवस्था के प्रति फिर से निष्ठावान बना सकती है और भलाई के लिए प्रेरित कर सकती है। यह भारतीयों को अपने पर नाज करने का मौका भी दे सकती है, और यह अहसास भी कि उसे पुराने ढर्रे पर नहीं जाना है। लेकिन युवा मतदाताओं को क्या विकल्प दिए जा रहे हैं?

चुनावी दौड़ में शामिल एक पार्टी वही घिसटती वंशवादी सरकार का नजरिया पेश करती है। दूसरी पार्टी के पास भारत के अतीत का एक संकीर्ण नजरिया है, जो जोड़ता नहीं, बल्कि तोड़ता है। यह व्यक्तिवादी है, निरंकुश है और उस तरह की हुकूमत की बात करता है, जो इंदिरा गांधी की विफलता का कारण बना था, जब आपातकाल के दौरान सत्ता पूरी तरह उनके हाथों में थी। इन दोनों से बाहर भ्रष्टाचार मुक्त भारत का एक सामान्य नजरिया है, जो यह महसूस नहीं करता कि इस लक्ष्य को पाने के लिए किस तरह का बदलाव जरूरी है। हालांकि, केजरीवाल के इस नजरिये को जो प्रतिक्रिया मिली है, उससे उनकी बदलाव की इच्छाशक्ति का पता चलता है। इसलिए भी मैं संभवतः आवश्यकता से अधिक निराश हूं। शायद वह या दूसरे नेता महसूस करेंगे कि शासन की बुराइयों को खत्म और भविष्य के भारत का नजरिया पेश किए बिना भ्रष्टाचार का खात्मा नहीं किया जा सकता। इन दोनों की जड़ें अतीत में हैं।

(लेखक दिल्ली में बहुत वर्षों तक बीबीसी के ब्यूरो प्रधान थे, त्यागपत्र देकर भारत में ही रह गए। उन्हें पद्मभूषण से सम्मानित किया गया है)

भ्रष्टाचार की बुनियाद कहाँ है ?

किशन पटनायक

'भ्रष्टाचार – भ्रष्टाचार चिल्लाने से उसमें कोई कमी नहीं आती। इसका मतलब है कि भ्रष्टाचार को नियंत्रण में रखनेवाली स्थितियाँ बिगड़ चुकी हैं और नियंत्रण करनेवाली व्यवस्था में बहुत खोट आ गई है। कभी – कभी भ्रष्टाचार की कुछ सनसनीखेज घटनाओं को लेकर जो भ्रष्टाचार विरोधी वातावरण बनता है या 'लहर' देश में पैदा होती है, उसका खोखलापन यह है कि उसमें सामाजिक स्थिति और नियंत्रण व्यवस्था की बुनियादी खामियों पर ध्यान नहीं जाता है। यहाँ तक कि मुख्य अपराधी को दंडित करने के बारे में गंभीरता नहीं रहती। वह सिर्फ एक व्यक्ति–विरोधी या घटना–विरोधी प्रचार होकर रह जाता है। कभी–कभी तो लगता है कि इस प्रकार के विरोधी प्रचार को चलाने के पीछे कुछ निहित स्वार्थ सक्रिय हैं।

प्रश्न : क्या भ्रष्टाचार उन्मूलन के लिए जनान्दोलन एक कारगर उपाय हो सकता है?

उत्तर : नहीं। सिर्फ भ्रष्टाचार की विशेष घटनाओं के प्रति जन आक्रोश को संगठित किया जा सकता है, किसी एक घटना को मुद्दा बनाकर एक राजनैतिक कार्यक्रम चलाया जा सकता है, जैसे बोफोर्स, बैंक घोटाला इत्यादि। भ्रष्टाचार करनेवाले व्यक्ति के विरुद्ध प्रचार अभियान चलाकर उसे थोड़े समय के लिए बदनाम भी किया जा सकता है। लेकिन इन कार्यक्रमों से भ्रष्टाचार का उन्मूलन नहीं होता। समाज, राजनीति, और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार इस तरह के आन्दोलनों के द्वारा प्रभावित नहीं होता है, ज्यों का त्यों बना रहता है।

प्रश्न : तो क्या भ्रष्टाचार बना रहेगा और मान लेना पड़ेगा कि यह एक अनिवार्यता है, इससे छुटकारा संभव ही नहीं?

उत्तर : कुछ मात्रा में भ्रष्टाचार रहेगा ही, वह अनिवार्य है। इसीलिए तो राज्य व्यवस्था बनी हुई है – हिंसा और भ्रष्टाचार को नियंत्रित रखने के लिए। सवाल वहाँ उठता है, जहाँ भ्रष्टाचार पर नियंत्रण नहीं हो रहा है। एक निम्नतम स्तर तक भ्रष्टाचार रहेगा, तो राज्य व्यवस्था उसे संभाल लेगी, उससे जनजीवन अस्तव्यस्त नहीं हो जाएगा। भ्रष्टाचार तब एक केन्द्रीय समस्या बनता है जब उसके कारण एक औसत नागरिक के लिए सामान्य ढंग से ईमानदारी का जीवन जीना मुश्किल हो जाता है। जब भ्रष्टाचार का शिकार हुए बगैर रोजमर्रा का काम नहीं चल पाता है, तब भ्रष्टाचार से मुक्त होने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। तब तो और भी, जब यह आशंका होने लगती है कि मंत्री, विधायक, अफसर या सेनापति अपने स्वार्थ के लिए देश हित और समाज हित के विरुद्ध जानबूझकर काम कर सकते हैं। इस प्रकार का भ्रष्टाचार न स्वाभाविक है और न ही अनिवार्य। यह मनुष्य–कृत और समाज–कृत है। यह इस बात की चेतावनी है कि समाज के सचेत लोग सामूहिक जीवन को संचालित करने में विफल हो रहे हैं। मानो न्यायचक्र का घूमना बन्द हो गया है। इस अवस्था में नेक आदमी भी भ्रष्टाचार करने लगता है और कोई आदमी ईमानदारी से अपना काम करता है, तो उसकी हालत दयनीय हो जाती है। पूरा तंत्र उसके खिलाफ हो जाता है। इसके विपरीत सामान्य अवस्था में भ्रष्टाचार सिर्फ लोभी और बेशर्म आदमियों तक सीमित रहता है और अधिकांश घटनाओं में लोग आश्वस्त रहते हैं कि दोषी दण्डित होगा।

सबसे पहले यह समझना होगा कि भ्रष्टाचार का कारण न व्यक्ति है, न विकास है। अगर विकास के ढाँचे में भ्रष्टाचार का बढ़ना अनिवार्य है तो वह फिर विकास ही नहीं है। मनुष्य स्वभाव की विचित्रता में बुराइयाँ भी हैं, कमजोरियाँ भी हैं। मनुष्य स्वभाव में जिस मात्रा में बुराई होती है वह तो मनुष्य समाज में रहेगी ही। उस पर नियंत्रण रखने के लिए सभ्यता में धर्म, संस्कृति, राज्यव्यवस्था आदि की उत्पत्ति हुई है। अगर उन पर नियंत्रण नहीं रह पाया तो धर्म, संस्कृति, राज्य, अर्थव्यवस्था – हरेक पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा। अगर प्रशासन और अर्थव्यवस्था सही है तो समाज में भ्रष्ट आचरण की मात्रा नियंत्रित रहेगी। उससे राज्य को कोई खतरा नहीं होगा। उतना भ्रष्टाचार प्रत्येक समाज में स्वाभाविक रूप से रहेगा।

जब भ्रष्टाचार इस दूसरी, खतरनाक अवस्था में पहुँच जाता है, तब 'भ्रष्टाचार – भ्रष्टाचार' चिल्लाने से उसमें कोई कमी नहीं आती। इसका मतलब है कि भ्रष्टाचार को नियंत्रण में रखनेवाली स्थितियाँ बिगड़ चुकी हैं और नियंत्रण करनेवाली व्यवस्था में बहुत खोट आ गई है। कभी – कभी भ्रष्टाचार की कुछ सनसनीखेज घटनाओं को लेकर जो भ्रष्टाचार विरोधी वातावरण बनता है या 'लहर' देश में पैदा होती है, उसका खोखलापन यह है कि उसमें सामाजिक स्थिति और नियंत्रण व्यवस्था की बुनियादी खामियों पर ध्यान नहीं जाता है। यहाँ तक कि मुख्य अपराधी को दंडित करने के बारे में गंभीरता नहीं रहती। वह सिर्फ एक व्यक्ति–विरोधी या घटना–विरोधी प्रचार होकर रह जाता है। कभी–कभी तो लगता है कि इस प्रकार के विरोधी प्रचार को चलाने के पीछे कुछ निहित स्वार्थ सक्रिय हैं।

भ्रष्टाचार को जड़ से समझने के लिए निम्नलिखित आधारभूत विकृतियों की ओर ध्यान देना होगा – (1) प्रशासन के ढाँचे की गलतियाँ। जवाबदेही की स्पष्ट और समयबद्ध प्रक्रिया का न होना, भारतीय शासन प्रणाली का मुख्य दोष है। (2) समाज में आय–व्यय तथा जीवन–स्तरों की गैर–बराबरियाँ अत्यधिक हैं। जहाँ ज्यादा गैर–बराबरियाँ रहेंगी, वहाँ भ्रष्टाचार अवश्य व्याप्त होगा। (3) राष्ट्रीय चरित्र का पतनशील होना।

जो लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ बहुत ज्यादा आक्रोश दिखाते हैं और भ्रष्टाचार को ही देश की अधोगति का केन्द्रीय मुद्दा मानते हैं, वे इस समस्या की जटिलताओं को बिलकुल अनदेखा कर देते हैं, मानो भ्रष्टाचार सिर्फ व्यक्ति–चरित्र का सवाल है। मानो प्रशासन और अर्थनीति जैसे हैं वैसे ही रहें, लेकिन भ्रष्टाचार खत्म हो जाना चाहिए। वे, दरअसल, जटिल और कठिन प्रश्नों से दूर भागने की अन्दरूनी इच्छा से प्रेरित हैं, जबकि जटिल प्रश्नों के साथ जोड़कर ही भ्रष्टाचार के सवाल का कोई कारगर समाधान निकल पाएगा ।

भ्रष्टाचार भारत में व्यवस्था का एक अंग है। ऐसे नियम–कायदे बने हुए हैं कि भ्रष्टाचार पनपेगा ही। प्रशासन के नियमों के बारे में कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। प्रशासन में सुधार करना राजनीति का कोई मुद्दा नहीं है, भ्रष्टाचार–विरोधियों का भी मुद्दा नहीं है। अगर होता, तो इस तरह के गलत नियम अब तक नहीं रह पाते। उदाहरण के लिए, कुछ राज्यों में, जहाँ गैर–सरकारी स्कूलों के शिक्षकों को वेतन सरकार देती है, ऐसे नियम बने हुए हैं कि प्रत्येक स्कूल का अध्यक्ष जिले के एक शिक्षा अधिकारी के दफ्तर में जाकर अपने स्कूल के लिए वेतन की रकम ले आयेगा और वितरित करेगा। अधिकारी बहाना बनाकर कई सप्ताहों तक टाल भी सकता है या घूस लेकर समूची राशि सही समय पर दे सकता है। प्रत्येक शिक्षक जानता है कि उसके मासिक वेतन का कुछ अंश घूस में जा रहा है। इस विकृति को सुधारना मामूली बात है – चेक द्वारा वेतन सीधे शिक्षकों के खाते में ही जमा होना चाहिए। इस प्रकार के हजारों गलत नियम बने हुए हैं, जिन्हें बदलने की जरूरत है। लेकिन प्रशासन में सुधार किसी राजनैतिक दल का महत्वपूर्ण कार्यक्रम नहीं है। भ्रष्टाचार विरोध को एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप में चलानेवाले लोग भी इस पर कोई ध्यान नहीं देते।

राजनैतिक दल और भ्रष्टाचार

राजनैतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रों में अवरोध पैदा करनेवाले इस सामाजिक रोग का निदान और प्रतिकार ढूढ़ने का कोई गम्भीर प्रयास न होना मौजूदा भारतीय स्थिति का एक स्वाभाविक पहलू है। बुद्धिजीवी और राजनेता, दोनों एक सर्वग्रासी जड़ता के शिकार हैं। भ्रष्टाचार का मुद्दा पिछले कई महीनों से भारतीय राजनीति का सबसे गरम मुद्दा बना हुआ है। राजीव गांधी की गद्दी हिल गई है। इस मुद्दे को हथियार बनाकर सारा विपक्ष चुनाव लड़ेगा। लेकिन किसी दल की ओर से यह नहीं बताया जाता है कि भ्रष्टाचार मिटाने के लिए उसके पास क्या कार्यक्रम है? कम्युनिस्ट राजनेता और

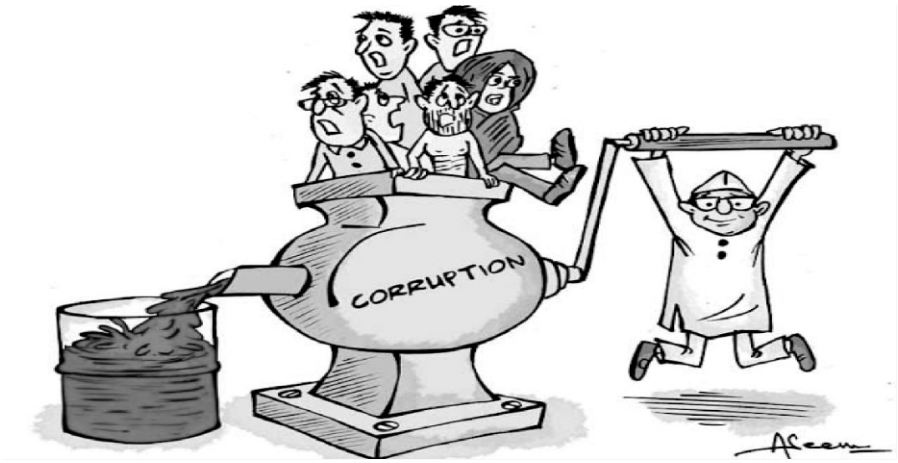

बुद्धिजीवी यह कहकर छुटकारा पा लेते हैं कि क्रांति के द्वारा भ्रष्टाचार का उन्मूलन हो जायेगा। यह उस तरह की बात है जैसे कुछ लोग कहते हैं कि भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए तानाशाही चाहिए।

जब कम्युनिस्ट चीन को भी भ्रष्टाचार बढ़ने की चिन्ता होने लगी और भारत में क्रांति होने के पहले ही कम्युनिस्टों ने राज्यों की सरकार सँभालने के लिए रणनीति बनाई है तो कम्युनिस्ट प्रवक्ताओं को भी क्रांति की सपाट बात न कहकर अधिक ब्यौरे में जाकर इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा।

जब तक भ्रष्टाचार के सामाजिक – आर्थिक कारणों के बारे में समझ पैदा नहीं होगी, तब तक यह सिद्धान्त प्रचलित रहेगा कि शासकों के व्यक्तिगत चरित्र को उन्नत करना ही भ्रष्टाचार निरोध का निर्णायक उपाय है। यही वजह है कि भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए जाँच और छापे मारने की कार्रवाइयों के अलावा दूसरे उपाय भी हो सकते हैं, यह बात लोगों के दिमाग में नहीं आती।

सबसे पहले यह समझना होगा कि भ्रष्टाचार का कारण न व्यक्ति है, न विकास है। अगर विकास के ढाँचे में भ्रष्टाचार का बढ़ना अनिवार्य है तो वह फिर विकास ही नहीं है। मनुष्य स्वभाव की विचित्रता में बुराइयाँ भी हैं, कमजोरियाँ भी हैं। मनुष्य स्वभाव में जिस मात्रा में बुराई होती है वह तो मनुष्य समाज में रहेगी ही। उस पर नियंत्रण रखने के लिए सभ्यता में धर्म, संस्कृति, राज्यव्यवस्था आदि की उत्पत्ति हुई है। अगर उन पर नियंत्रण नहीं रह पाया तो धर्म, संस्कृति, राज्य, अर्थव्यवस्था – हरेक पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा। अगर प्रशासन और अर्थव्यवस्था सही है तो समाज में भ्रष्ट आचरण की मात्रा नियंत्रित रहेगी। उससे राज्य को कोई खतरा नहीं होगा। उतना भ्रष्टाचार प्रत्येक समाज में स्वाभाविक रूप से रहेगा। परंतु जब प्रशासन और अर्थव्यवस्था असंतुलित है और सांस्कृतिक परिवेश भी प्रतिकूल है तब भ्रष्टाचार की मात्रा इतनी अधिक हो जाएगी कि वह नियंत्रण के बाहर होगा, उससे जनजीवन और राज्य दोनों के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। इसी अर्थ में हम कहते हैं कि विकसित देशों में भ्रष्टाचार की समस्या नगण्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि वहाँ भ्रष्टाचार की घटनायें नहीं होती हैं। उन देशों में भ्रष्टाचार राज्य और समाज के इतने नियंत्रण में है कि उसकी मात्रा खतरे की सीमा से ऊपर नहीं जाती।

यह भी समझना चाहिए कि बड़ा और 'छोटा' भ्रष्टाचार एक जैसा नहीं होता है। जनसाधारण को यह सिखाया गया है कि छोटा चोर और बड़ा चोर दोनों एक हैं। कानून में भी वे दोनों एक नहीं हैं। भ्रष्टाचार की जिस घटना से राज्य और मानव समाज को अधिक हानि पहुँचती है उसे अक्षम्य अपराध माना जाना चाहिए। सत्ता में प्रतिष्ठित व्यक्तियों का भ्रष्टाचार अधिक हानिकारक होता है। रक्षक का भक्षक होना अधिक जघन्य है। सर्वोच्च पदों पर प्रतिष्ठित व्यक्तियों के गलत तौर–तरीकों को नीचेवाले लोग सहज ढंग से अपनाते हैं। इसीलिए नीचे के स्तर का भ्रष्टाचार अपेक्षाकृत कम दोषवाला होगा। इस आपेक्षिक दृष्टि को बगैर अपनाये हम भ्रष्टाचार की जड़ तक नहीं पहुँच पाएँगे। 1962 में राममनोहर लोहिया ने जब यह सवाल उठाया कि प्रधानमंत्री पर इतना अधिक तामझाम, फिजूल खर्च क्यों होता है? तब देश के राजनेताओं ने और बुद्धिजीवियों ने इस सवाल को अप्रासंगिक मानकर या तो मखौल उड़ाया या चुप्पी साध ली। मंत्रियों का खर्च और उनकी नकल करने वालों का खर्च इस दरमियान बढ़ गया। वर्तमान प्रधानमंत्री का फिजूल खर्च तो इतना बढ़ गया है कि अखबारवाले भी ताना कस रहे हैं। जो लोग लोहिया के आरोपों को बकवास या द्वेषपूर्ण कहते थे इस वर्ग के लोग भी प्रधामंत्री, मंत्रियों और सांसदों की फिजूलखर्ची से चिन्तित हैं। लोहिया ने उन्हीं दिनों कहा था कि सर्वोच्च पद पर बैठे हुए आदमी का फिजूल खर्च तथा भोग–विलास पूरे समाज को भ्रष्ट बनाता है। अगर उसको हटाया नहीं गया तो उसके सहयोगियों में, नौकरशाहों में भोगवृत्ति बढ़ जाएगी।

(लेखक प्रखर समाजवादी विचारक और लोकप्रिय नेता थे)

भ्रष्टाचार और शासन व्यवस्था

डॉ० जगदीश प्रसाद

आजादी के समय गांधी जी ने एक सपना देखा था कि देश के आजाद होने पर हर आंख से आंसू पोछे जाएंगे। लेकिन उनका सपना आजादी के 66 वर्षों बाद भी महज सपना ही रह गया है। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि आजादी के बाद देश ने कई मायनों में अच्छी तरक्की की है। लेकिन इस तरक्की के बीच दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि भ्रष्टाचार एक दानव की तरह उत्पात करने लगा है। आज भ्रष्टाचार देश की न केवल सबसे गंभीर समस्या बन चुकी है बल्कि इसने पूरे तंत्र और विकास की प्रक्रिया को बाधित कर रखा है।

असलियत यह है कि भ्रष्टाचार की जड़ें प्रशासन के दोषपूर्ण स्वरूप एवं कार्यकलाप के कारण मजबूत हुईं। समय बीतने के साथ यह कैंसर की तरह फैलता गया। सही इलाज के अभाव में यह आज अजगर के समान विकराल हो चुका है। समाज के हर वर्ग के लोगों को इसने अपनी चपेट में ले रखा है। हम कह सकते हैं कि चरम सीमा पर पहुँचे भ्रष्टाचार के कारण समाज का चरित्र पूरी तरह आज अमर्यादित हो चुका है।

आजादी के बाद शासन की बागडोर संभालने वाले हर राजनीतिक दल ने अच्छा प्रशासन देने का भरोसा दिलाया, भ्रष्टाचार बर्दाश्त नहीं करने की बात कही। किंतु परिणाम बिल्कुल उलटा निकला। आज सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर भ्रष्टाचार का प्रभाव साफ–साफ दिख रहा है। सार रूप में कहें तो राजनीतिक व्यवस्था पूरी तरह चरमरा चुकी है। समाज अपनी एकजुटता खो चुका है एवं आर्थिक विकास की गति धीमी पड़ चुकी है।

राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार के खिलाफ समय–समय पर हो हल्ला होता रहा है। अभी हाल में इसी तरह का हल्ला बोल या भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाकर आम आदमी पार्टी दिल्ली का शासन कब्जाने में कामयाब हो गई है। लेकिन यह सवाल मुंह बाये खड़ा है कि 'आप' भ्रष्टाचार जैसी जटिल समस्या का सामना किस तरह करेगी। यथार्थ में

पंचायती राज व्यवस्था के लिए संविधान का 73 वां संशोधन स्वतंत्र भारत के प्रशासन एवं लोकतंत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 24 अप्रैल 1993 को पारित यह संशोधन वस्तुतः लोकतंत्र एवं गणतंत्र के सुखद मिलन का द्योतक था। इतना ही नहीं यह सत्ता के विकेंद्रीकरण का सत्यापन भी था। देश के विकास में जनता की भागीदारी बढ़ाने, प्रशासन को पारदर्शी बनाने एवं भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण एवं कारगर पहल थी।

इस बात की पड़ताल करने की जरूरत है कि वर्तमान शासन व्यवस्था की जो रूपरेखा है उसमें 'आप' क्या भ्रष्टाचार खत्म कर पाएगी।

'आप' के दबाव में लोकपाल विधेयक संसद में पारित हो चुका है। लेकिन क्या इस विधेयक से भ्रष्टाचार का इलाज हो जाएगा? शासन संभालने के बाद 'आप' के मंत्रियों एवं कार्यकर्ताओं के कामकाज का जो तरीका सामने आ रहा है उससे तो लगता है कि भ्रष्टाचार तो नहीं ही खत्म होगा, उल्टे अराजकता भी बढ़ेगी।

ऐसे में भ्रष्टाचार की बुनियाद को समझने की जरूरत है। यह समझने की जरूरत है कि भ्रष्टाचार व्यवस्था का प्रतिफल है और व्यवस्था में क्रांतिकारी बदलाव लाए बगैर भ्रष्टाचार से नहीं निपटा जा सकता। व्यवस्था में बदलाव की पहली जरूरत शासन में जनता की भागीदारी बढ़ाना होगा। इस संदर्भ में गांधी जी द्वारा बिल्कुल साधारण शब्दों में कही गई बातों को बारीकी से समझना होगा एवं उसे कार्यान्वित करना होगा। गांधी जी मानते थे कि भारत गांवों में बसता है। इसलिए देश के सर्वांगीण विकास के लिए जरूरी है कि हर गांव में स्कूल हो, सड़क हो एवं क्रियाशील पंचायत हो। उन्होंने ग्राम स्वराज्य की सार्थकता पर विशेष जोर दिया था। शासन व्यवस्था के लिए विकेंद्रीकरण के सिद्धांतों को प्रतिपादित किया था।

पंचायती राज व्यवस्था के लिए संविधान का 73 वां संशोधन स्वतंत्र भारत के प्रशासन एवं लोकतंत्र की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। 24 अप्रैल 1993 को पारित यह संशोधन वस्तुतः लोकतंत्र एवं गणतंत्र के सुखद मिलन का द्योतक था। इतना ही नहीं यह सत्ता के विकेंद्रीकरण का सत्यापन भी था। देश के विकास में जनता की भागीदारी बढ़ाने, प्रशासन को पारदर्शी बनाने एवं भ्रष्टाचार मुक्त समाज बनाने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण एवं कारगर पहल था।

इस संशोधन के बाद ही अधिकतम राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं का पहला चुनाव कराया गया था। आशा बंधी थी कि इस पहल से विकेंद्रीकरण का पक्ष मजबूत होगा। लेकिन भ्रष्टाचार के कैंसर ने पंचायती राज व्यवस्था तक अपनी पहुंच बना ली और पंचायती राज अपने उद्देश्यों को पूरा करने में विफल साबित हो रहा है।

ऐसे में मूल प्रश्न यह है कि शासन व्यवस्था का स्वरूप कैसा हो जिसकी मदद से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों को दूर किया जा सके। बेवाक रूप से कहा जा सकता है कि हमें अपना नजरिया बदलना होगा। प्रशासन की नई संरचना एवं पद्धति गंभीर बहस का विषय हो सकता है, लेकिन यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश ने जिस शासन पद्धति को अपनाया उससे हम समस्याओं का समाधान नहीं कर पाए हैं। स्वाभाविक है देश की परिस्थिति के अनुरूप अगर हम शासन व्यवस्था की संरचना करते हैं तो उसके सुखद परिणाम जरूर परिलक्षित होंगे एवं देश में न केवल विकास का मार्ग प्रशस्त होगा, बल्कि समता मूलक समाज का निर्माण भी होगा। गांधी के सपनों को पूरा करते हुए किसी भी आंख में आंसू नहीं होगा।

(लेखक अनुग्रह नारायण सिंह सामाजिक अध्ययन संस्थान, पटना के प्रध्यापक रह चुके हैं)

पाठकों से

"राष्ट्रीय कायाकल्प" में प्रतिपादित विश्लेषणों, विचारों और कार्यक्रमों के संबंध में आपके विचारों, सुझावों और प्रतिक्रियाओं का हम स्वागत करेंगे। इसके लिए आप हमसे निम्नलिखित रूप में संपर्क स्थापित कर सकते हैं:

1. **संपादक के नाम पत्र से : पता - डा. टी. प्रसाद, 173 बी, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001**
2. **इमेल से : पता- rashtriyakayakalp@gmail.com**
3. **टेलीफोन- 0612-2541276 (कार्यालय)**
   0612-2541885 (आवास)
4. **मोबाईल- 09431815755**
5. **वेबसाइट- www.fcsgi.org इस वेबसाइट पर आप भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच, जिसका मुखपत्र राष्ट्रीय कायाकल्प है, के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।**

(नोट : डाक अथवा इमेल से प्राप्त आपके पत्रों को पूर्ण/संक्षिप्त/संशोधित रूप में हम अपनी सुविधा के अनुसार राष्ट्रीय कायाकल्प के आने वाले अंक में यथा आवश्यक अपनी टिप्पणी के साथ प्रकाशित करेंगे।)

महात्मा गाँधी क्यों समझते थे कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन भारत के लिए एक अभिशाप था ?

भाग 1

(अपने ऊपर लगाए गए देशद्रोह के अभियोग के मुकदमें में अंग्रेज जज के समक्ष गांधी का बयान)

1921–22 में महात्मा गांधी द्वारा सम्पादित ''यंग इंडिया'' पत्रिका के विभिन्न अंकों में प्रकाशित और उनके द्वारा लिखित तीन आलेखों को आपत्तिजनक मानते हुए उन पर भारतीय दंड संहिता की धारा 124A के तहत देशद्रोह का मुकदमा दायर हुआ। आरोप था कि उनके ये आलेख तत्कालीन भारत में कानून द्वारा स्थापित ब्रिटिश सरकार के प्रति लोगों में अनिष्ठा और असंतोष फैलाने वाले थे।

अहमदाबाद में 18 मार्च 1922 को ब्रिटिश जिला और सत्र न्यायाधीश श्री सी०एन० ब्रूमफिल्ड, आइ०सी०एस० के समक्ष हुई सुनवाई में सर्वप्रथम महाधिवक्ता ने बम्बई, मालाबार और चौरी चौरा में हुए उपद्रव और हत्या की घटनाओं की चर्चा करते हुए महात्मा गाँधी से कहा ''इन आलेखों में आप अपने अभियान और सिद्धांतों को तो अहिंसा पर आधारित होने की बात करते हैं, लेकिन कहते हैं कि यह सरकार विश्वासघाती और बेईमान है और आप जानबूझकर और खुल्लम खुल्ला इस सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए लोगों को उकसाते हैं तो अहिंसा का आग्रह करने का क्या अर्थ है?'' इन आरोपों के संबंध में न्यायाधीश के समक्ष महात्मा गांधी ने अपना लिखित बयान देने के पहले निम्नलिखित बातें कहीं,

''महाधिवक्ता द्वारा मेरे सम्बंध में कही हुई बातों का मैं पूर्णतः अनुमोदन करता हूँ। मैं समझता हूँ कि उन्होंने ये बातें इसलिए कही हैं कि वे बहुत सत्य हैं। न्यायालय से यह बात छिपाने की मेरी कोई मंशा नहीं है कि वर्त्तमान शासन व्यवस्था के प्रति असंतोष और अनिष्ठा का प्रतिपादन और प्रवचन करना एक तरह से मेरा उत्कट मनोभाव हो गया है। महाधिवक्ता का यह कहना एकदम ठीक है कि इस तरह असंतोष और अनिष्ठा का प्रतिपादन और प्रवचन करना ''यंग इंडिया'' से मेरे सम्बंध के समय से ही नहीं, बल्कि यह बहुत पहले ही शुरू हो चुका था, जितना पहले महाधिवक्ता ने बताया है, उससे भी पहले। यह मेरे लिए कष्टप्रद कर्त्तव्य है लेकिन जो उत्तरदायित्व मेरे कंधों पर है उनका तो मुझे निर्वहन करना है। बम्बई, मद्रास और चौरी चौरा की घटनाओं के लिए विद्वान महाधिवक्ता ने जो भी दोष मुझ पर गढ़ा है वह मैं सच मानता हूँ। गहराई से इन वारदातों के बारे में रात–दिन सोचते हुए चौरी चौरा में घटित जघन्य अपराध और बम्बई में हुए पागलतापूर्व कारनामें से अपने को अलग करना मेरे लिए असम्भव है। उनका ये कहना कि मेरे जैसे उत्तरदायी, शिक्षित

सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि अंग्रेज और देश के शासन में उनके सहयोगी भारतीय नहीं जानते कि जिस अपराध का वर्णन करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ वे उसमें लिप्त हैं। मुझे विश्वास है कि बहुत से अंग्रेज और भारतीय पदाधिकारी ईमानदारी पूर्वक विश्वास करते हैं कि वे जिस शासन व्यवस्था को चला रहे हैं वह दुनिया की सबसे अच्छी व्यवस्थाओं में एक है और भारत लगातार, लेकिन धीमी गति से, प्रगति कर रहा है। वे नहीं जानते कि एक तरफ एक सूक्ष्म लेकिन प्रभावी आतंकी व्यवस्था और बल का संगठित प्रदर्शन और दूसरी तरफ प्रतीकार या अपनी सुरक्षा की शक्ति के अपहरण ने लोगों को नपुंसक बना दिया है।

और दुनिया का पर्याप्त अनुभव प्राप्त व्यक्ति को यह भान होना चाहिए था कि मेरी बातों और कृतियों का क्या प्रभाव पड़ेगा, एक दम ठीक है। मुझे यह भान था। मैं जानता था कि मैं आग से खेल रहा हूँ। लेकिन मैं ने यह जोखिम लिया और यदि मैं आजाद कर दिया जाऊँ तो भी वैसा ही करूँगा। मैंने आज सुबह भी महसूस किया है कि मैं ने जो अभी कहा है वह नहीं कहता तो मैं अपने कर्त्तव्य से गिर जाता।

मैं नहीं चाहता था कि कोई हिंसा हो। अहिंसा मेरी आस्था का पहला सूत्र है। मेरे विचार पंथ का आखिरी सूत्र भी यही है। लेकिन मुझे एक रास्ता चुनना था। या तो मुझे उस व्यवस्था के सामने घुटने टेक देना था, जिसको मैं समझता हूँ कि इसने मेरे देश को अपूरणीय क्षति पहुँचाई है, या मेरे ओठों से निकली हुई बातों की सच्चाई जानने के बाद मेरे देशवासियों का बेलगाम गुस्सा फूटने का जोखिम लेना था। मैं जानता हूँ कि मेरे देशवासी आक्रोश से कभी पागल हो जाते हैं। मुझे इस बात का बेहद दुःख है और इसलिए मैं हल्का दंड नहीं, बल्कि कठोरतम दंड पाने के लिए यहाँ उपस्थित हूँ। मैं दया याचना नहीं कर रहा हूँ। मेरे दंड को कम करने की भी कोई वकालत नहीं कर रहा हूँ। इसलिए उस कृत्य के लिए, जो कानून की दृष्टि में जानबूझ कर किया हुआ अपराध है और जो एक देशवासी के लिए मुझे सबसे बड़ा कर्त्तव्य लगता है, जो कठोरतम दंड दिया जा सके, उसे पाने और सहने के लिए यहाँ हूँ और आपको इसके लिए आमंत्रित कर रहा हूँ। इसलिए न्यायाधीश महोदय, जैसा कि मैं अपने लिखित बयान में कहने जा रहा हूँ, आपके सामने एक ही रास्ता है – या तो आप अपने पद से त्यागपत्र दे दें या यदि आप समझते हैं कि जिस व्यवस्था और कानून कायम रखने में आप सहायक हैं वह लोगों के लिए उचित है, तो आप मुझे कठोरतम दंड दें। लेकिन जब मैं अपना लिखित बयान समाप्त करूँगा, मेरे दिलोदिमाग में पागलपन की इस हद तक जोखिम लेने के लिए जो बात कौंध रही है, उसकी कुछ झलक आपको मिल जायेगी''।

इसके बाद महात्मा गाँधी ने अपना लिखित बयान पढ़ा, जो नीचे उद्धरित है।

''भारतीय जनता के प्रति और इंग्लैंड की जनता के प्रति, जिनको तुष्ट करने के लिए ही मुख्यतः यह मुकदमा किया गया है, संभवतः मेरा यह कर्तव्य बनता है कि मैं यह समझाऊँ कि क्यों मैं एक पक्का वफादार और सहयोगी से दृढ़प्रतिज्ञ राजद्रोही और असहयोगी बन गया हूँ। न्यायालय से भी मैं यह कहना चाहूँगा कि क्यों मैं भारत में कानून द्वारा स्थापित सरकार के प्रति असंतोष और अनिष्ठा पैदा करने के आरोप के लिए मैं अपना अपराध स्वीकार कर रहा हूँ।

मेरा सार्वजनिक जीवन 1893 में दक्षिण अफ्रीका में मुश्किल परिस्थिति में शुरू हुआ। उस देश के ब्रिटिश शासन से मेरा पहला सम्पर्क अच्छा नहीं साबित हुआ। मैं ने पाया कि एक मनुष्य और एक भारतीय होने के नाते मुझे कोई अधिकार नहीं था। या यों कहा जाये कि मैं ने पाया कि मुझे मनुष्य होने के नाते कोई अधिकार नहीं था क्योंकि मैं एक भारतीय था। लेकिन मैं बहुत विस्मित नहीं हुआ। मैंने सोचा कि भारतीयों के प्रति यह बर्ताव एक ऐसी व्यवस्था, जो वास्तव में और मुख्यतः अच्छी है, में बदनुमा दाग भर है। मैंने वहाँ की सरकार को स्वतः और दिल से सहयोग दिया। लेकिन जहाँ मैंने समझा कि वह गलत है, वहाँ इसकी खुलकर आलोचना भी की। लेकिन मैंने कभी इसका विध्वंस नहीं चाहा।

इसीलिए जब 1899 में 'बोअर' चुनौती के चलते साम्राज्य का अस्तित्व खतरे में था तो इसे मैंने अपनी सेवाएं प्रदान कीं, एक स्वयंसेवी एम्बुलेंस दल गठित किया और लेडीस्मिथ की मुक्ति के लिए सैनिक कार्रवाई के कई मोर्चों पर सहायता पहुँचाई। इसी तरह 1906 में 'जुलु' विद्रोह के समय मैंने स्ट्रेचर ढोने वालों का एक दल गठित किया और विद्रोह की समाप्ति तक उसकी सेवाएं दीं। दोनों अवसरों पर मुझे इन सेवाओं के लिए पुरस्कृत किया गया और युद्ध संवादों में मेरी चर्चा भी की गयी। दक्षिण अफ्रीका में मेरे द्वारा किए गए कामों के लिए लॉर्ड हार्डिंग द्वारा मुझे 'कैसरे हिंद' का स्वर्णपदक भी दिया गया। जब 1914 में इंग्लैंड और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ा, मैं ने लंदन में एक स्वयंसेवी एम्बुलेंस दल गठित किया

जिसमें लंदन में उस समय रहले वाले भारतीय, अधिकांशतः छात्र, थे। अधिकारियों द्वारा इसके कामों की सराहना भी की गयी। अंत में, भारत में जब 1918 में हुए युद्ध सम्मेलन में लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा रंगरूटों के लिए विशेष अपील की गयी, तो अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए खेड़ा में मैंने एक कोर संगठित करने के लिए मेहनत की और इसमें अच्छी सफलता भी मिल रही थी। लेकिन तब तक युद्ध की समाप्ति होने लगी और आदेश आया कि अब और रंगरूटों की आवश्यकता नहीं है। मेरी सेवा के इन सब प्रयासों में मुझमें यह विश्वास काम कर रहा था कि ऐसी सेवाओं से मेरे देशवासियों के लिए साम्राज्य में पूर्ण बराबरी की स्थिति मिल जायेगी।

मेरे विश्वास को पहला धक्का रॉलेट एक्ट के रूप में आया। लोगों की सारी स्वतंत्रता छीनने के लिए ही यह कानून बनाया गया था। मुझे महसूस हुआ कि मुझे इसके विरूद्ध एक तीव्र आंदोलन छेड़ना चाहिए। फिर शुरू हुआ पंजाब की विभीषिका जिसकी शुरूआत हुई जालियाँवाला बाग के नरसंहार से और लोगों को रेंगेने का आदेश, कोड़े से पीटने तथा अन्य अवर्णननीय अपमान जनक कृत्यों के साथ पराकाष्ठा पर पहुँच गई। मैं ने यह भी देखा कि तुर्की और इस्लाम के पवित्र स्थानों की अक्षुण्णता के सम्बंध में प्रधानमंत्री के द्वारा दिये गये वचन के भी पूरा होने की कोई आशा नहीं है। लेकिन मित्रों के पूर्वाभास एवं गंभीर चेतावनियों के बावजूद 1919 के अमृतसर कांग्रेस में मैंने मौंटेगु– चेम्सफोर्ड के सुधारों के कार्यान्वयन में सहयोग देने की पुरजोर वकालत की – इस आशा में कि प्रधानमंत्री मुसलमानों को दिये गये वचन को पूरा करेंगे, पंजाब का घाव भर

जायेगा और सुधारों के अपर्याप्त तथा असंतोषजनक होने के बावजूद भारतीय जीवन में आशा की किरण प्रस्फुटित होगी। लेकिन ये सभी आशाएं चकनाचूर हो गईं। खिलाफत के सम्बंध में दिया गया वचन नहीं निभाया गया। पंजाब की जघन्य कृतियों की लीपापोती कर दी गयी, और इसके अधिकांश दोषियों को सजा देना तो दूर, वे सेवा में भी बरकरार रहे और भारत के राजस्व से कुछ अपना पेंशन भी लेते रहे। कुछ दोषी तो पुरस्कृत भी किए गए। मैने यह भी देखा कि इन सुधारों का मतलब कोई हृदय परिवर्त्तन नहीं था, ये तो भारत के धन को लूटते रहने और इसकी गुलामी की मियाद को बढ़ाने का एक तरीका था।

अनिच्छापूर्व मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ब्रिटेन के साथ सम्बंध ने भारत को राजनीतिक और आर्थिक रूप से इतना असहाय बना दिया है जितना यह पूर्व में कभी नहीं था। निःशस्त्र भारत चाहकर भी किसी आक्रमणकारी से सशस्त्र मुकाबला करने में असमर्थ हो गया है। स्थिति ऐसी हो गई है कि हमारे कुछ अच्छे व्यक्ति भी सोचने लगे हैं कि भारत को एक ''स्वतंत्र उपनिवेश'' का दर्जा पाने में भी कई पुश्त लग जाएंगे। भारत इतना गरीब हो गया है कि यह किसी दुर्भिक्ष का सामना करने में भी अशक्त है। भारत में ब्रिटेन के आने के पहले यहाँ के लाखों करोड़ों घरों में कताई–बुनाई का काम होता था जिससे उसके कृषि से होने वाली कम आय की भरपाई हो जाती थी। भारत के अस्तित्व के लिए इतना महत्त्वपूर्ण इसका कुटीर उद्योग अविश्वसनीय ढंग से हृदयहीन और अमानवीय प्रक्रियाओं द्वारा नष्ट कर दिया गया जिसका वर्णन एक अंग्रेज प्रत्यक्षदर्शी ने किया है। शहर के लोग क्या जानें कि आधा पेट खाने वाली भारत की जनता धीरे–धीरे प्राणहीनता की स्थिति में गिरती जा रही है। शहरवासी यह भी नहीं समझते कि उनकी थोड़े से आराम की जिन्दगी उस दलाली पर कायम है जो उन्हें विदेशी शोषणकर्त्ता के काम के लिए मिलती है और शोषणकर्त्ता का मुनाफा और उनकी दलाली दोनों जनता को चूसने से आती है। वे लोग यह नहीं महसूस करते कि भारत में कानून द्वारा स्थापित ब्रिटिश सरकार जनता के शोषण के लिए कार्यरत है। भारत के गाँवों के जीते–जागते नर–कंकाल जो दृश्य हमारी नंगी आँखों के सामने उपस्थित करते हैं उसका औचित्य किसी भी कुतर्क और आँकड़ों की बाजीगरी से नहीं सिद्ध किया जा सकता। मुझे लेश मात्र भी संदेह नहीं है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व है तो इंग्लैंड और शहरवासी दोनों को मानवता के विरुद्ध इस अपराध के लिए, जिसका जोड़ा इतिहास में नहीं है, जवाब देना पड़ेगा। इस देश के कानून का इस्तेमाल ही 'विदेशी शोषकों के हित के लिए होता है। पंजाब सैन्य कानून के अन्तर्गत होने वाले मुकदमों का पूर्वाग्रह रहित विश्लेषण के आधार पर मैं इस विश्वास पर पहुँचा हूँ कि कम

से कम 95 प्रतिशत दोषसिद्धि सर्वथा गलत थी। भारत के राजनीतिक मुकदमों के मेरे अनुभव के आधार पर मेरा निष्कर्ष है कि दस में से नौ सिद्धदोषी एकदम निर्दोष थे। उनका अपराध सिर्फ यही था कि वे अपने देश के प्रेमी थे। भारत की अदालतों में सौ में निन्यानबे मुकदमों में यूरोपवासियों के विरूद्ध भारतीयों को न्याय नहीं मिला है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। प्रायः हर भारतीय का, जिसे ऐसे मुकदमों से कोई सम्बंध रहा हो, यही अनुभव है। मेरे विचार में, न्यायकरण में कानून का इसी तरह शोषकों के लाभ के लिए, जानबूझकर या अनजान से, दुरूपयोग किया जाता है।

सबसे दुर्भाग्यपूर्ण बात तो यह है कि अंग्रेज और देश के शासन में उनके सहयोगी भारतीय नहीं जानते कि जिस अपराध का वर्णन करने का मैं प्रयास कर रहा हूँ वे उसमें लिप्त हैं। मुझे विश्वास है कि बहुत से अंग्रेज और भारतीय पदाधिकारी ईमानदारी पूर्वक विश्वास करते हैं कि वे जिस शासन व्यवस्था को चला रहे हैं वह दुनिया की सबसे अच्छी व्यवस्थाओं में एक है और भारत लगातार, लेकिन धीमी गति से, प्रगति कर रहा है। वे नहीं जानते कि एक तरफ एक सूक्ष्म लेकिन प्रभावी आतंकी व्यवस्था और बल का संगठित प्रदर्शन और दूसरी तरफ प्रतीकार या अपनी सुरक्षा की शक्ति के अपहरण ने लोगों को नपुंसक बना दिया है और उनमें ढोंग करने की आदत पैदा कर दी है। इस भद्दी आदत ने शासकों के अज्ञान और आत्मवंचना को और बढ़ा दिया है। 124A की धारा, जिसके तहत मुझे खुशी है कि मुझपर अभियोग लगाया गया है, एक नागरिक की स्वतंत्रता का हनन करने वाले भारतीय दंड संहिता की राजनीतिक धाराओं में शीर्ष पर है। अनुराग या मनोभाव का उत्पादन नहीं किया जा सकता या न ही कानून के द्वारा इसका नियमन। यदि किसी को किसी व्यक्ति या व्यवस्था के प्रति अनुराग नहीं है, उस मनोभाव को प्रकट करने की उसे पूरी आजादी होनी चाहिए, जब तक वह हिंसा की बात नहीं सोचता या इसे बढ़ावा नहीं देता या इसके लिए लोगों को भड़काता नहीं है। लेकिन जिस धारा के अंतर्गत श्री बैंकर और मुझे अभियोजित किया गया है उसमें असंतुष्टि या अनिष्ठा को प्रोत्साहित करना भी अपराध है। मैं ने इस धारा के अंतर्गत चलाए गए कुछ मुकदमों का अध्ययन किया है और मैं जानता हूँ कि भारत के कुछ बहुत लोकप्रिय देशभक्त इसके अन्तर्गत दोषी करार किए गए हैं। इसलिए मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि इसी धारा के अन्तर्गत मैं अभियुक्त हूँ। मैं ने संक्षेप में अपनी अनिष्ठा का कारण बताने का प्रयास किया है। किसी भी शासक के प्रति मेरी कोई वैयक्तिक दुर्भावना नहीं है, व्यक्ति के तौर पर राजा के प्रति मेरी अनिष्ठा होना तो दूर की बात है। लेकिन उस सरकार के प्रति, जिसने कुल मिलाकर भारत को जितनी क्षति पहुँचायी है उतना किसी पूर्ववर्त्ती व्यवस्था ने नहीं, अनिष्ठा रखना मैं सद्‌गुण मानता हूँ। ब्रिटिश शासन में भारत आज जितना पुरूषत्वविहीन है उतना पहले कभी नहीं था। ऐसा विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए इस व्यवस्था के प्रति निष्ठा रखना मैं पाप समझता हूँ। यह मेरा सौभाग्य है कि जिन आलेखों के आधार पर मुझे आरोपित किया जा रहा है उन्हें मैं लिख सका।

वास्तव में, मैं समझता हूँ कि भारत और इंग्लैंड, जो अभी एक अप्राकृतिक दशा में रह रहे हैं, असहयोग के माध्यम से उस दशा से बाहर आने का मार्ग दिखा कर मैंने दोनों देशों की सेवा की है। मेरे विचार में बुराई से असहयोग करना उतना ही कर्त्तव्य है जितना अच्छाई से सहयोग करना। लेकिन पहले असहयोग का इजहार जानबूझ कर बुराई करने वाले के प्रति हिंसा से किया जाता रहा है। मैं अपने देशवासियों को यह दिखलाने का प्रयास कर रहा हूँ कि हिंसक असहयोग बुराई को और बढ़ा देती है और बुराई सिर्फ हिंसा से ही बरकरार रहती है और हिंसा से पूरी तरह परहेज कर ही बुराई से सहयोग हटाया जा सकता है। अहिंसा का अर्थ है कि बुराई से असहयोग के लिए जो भी दंड हो उसे स्वेच्छा से भोगे। इसलिए मैं उस कृत्य के लिए, जो कानून की दृष्टि में जानबूझ कर किया हुआ अपराध है और जो मुझे लगता है कि एक नागरिक का सबसे पवित्र कर्त्तव्य है, कठोरतम दंड जो मुझे दिया जा सकता है उसे देने के लिए मैं आपको आमंत्रित करता हूँ और उसे मैं भोगने के लिए तैयार हूँ। न्यायाधीश और अन्य अधिकारीगण, आप लोगों के समक्ष एक ही रास्ता है। अगर आप महसूस करते हैं कि जिस कानून को आपको देख–रेख करने की जिम्मेदारी है, वह बुरा है और मैं वास्तव में निर्दोष हूँ तो अपने पदों से आप इस्तीफा दे दें और इस तरह अपने को इस बुराई से अलग कर लें या फिर यदि आप आश्वस्त हैं कि जो व्यवस्था और कानून के संचालन में आप सहयोग करते हैं वह इस देश के लोगों के हित में है और इस तरह मेरी गतिविधि सार्वजनिक हित में नहीं है तो मुझे कठोरतम दंड दें।''

(महात्मा गाँधी के अंग्रेजी में मूल बयान का सम्पादक द्वारा किया गया हिंदी अनुवाद)

भारत के भ्रष्टाचार की समस्या का समाधान या भ्रष्टाचार के रोग का निदान : क्या, क्यों और कैसे

भ्रष्टाचार को भारत की एक समस्या के रूप में प्रस्तुत करना या सोचना कतई ठीक नहीं है। सामान्यतया समस्या बाहरी परिस्थितियों द्वारा उत्पन्न होती है और उसका समाधान उन परिस्थितियों का प्रतीकार कर या नियंत्रित कर किया जाता है। भारत का भ्रष्टाचार एक रोग है जो इसकी काया को ग्रसित किए हुए है, इसे अशक्त बना रहा है, और उस काया में विभिन्न लक्षणों के रूप में प्रकट हो रहा है। हर लक्षण हम एक समस्या के रूप में देखते हैं और इसका समाधान करने में जुट जाते हैं, बिना उस रोग को समझे जिसका या लक्षण है। अतः हम असफल होते रहते हैं, जैसा कि किसी रोग का लक्षण आधारित उपचार करने से होता है। हम अपनी असफलता का बिना विश्लेषण किए और उससे बिना सही निदान का सूत्र पाए उसी उपचार को और तीव्र कर देते हैं ताकि लक्षण दब जाये या कम हो जाए। छः दशकों से ज्यादा का हमारा यही अनुभव रहा है कि ऐसे उपचार से रोग बढ़ता ही गया है। अतः आवश्यक है कि हम रोग की पहचान करें और सही पहचान के आधार पर इसका निदान करें।

ऐसा नहीं है कि भ्रष्टाचार के रोग की सही पहचान करने के प्रयास भारत में नहीं हुए हैं और उसकी पहचान नहीं हुई है। इस प्रयास की कुछ झलक तो इस पत्रिका के कई भ्रष्टाचार सम्बंधी आलेखों में भी मिलती है। सबसे प्रथम तो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक और युगद्रष्टा महात्मा गाँधी की पहचान है। उन्होंने पहचाना था कि भारत की दुर्दशा की जड़ और मूल कारण है औपनिवेशिक शासन व्यवस्था और इसलिए इस शासन व्यवस्था का परिवर्त्तन ही लक्ष्य था हमारे स्वतंत्रता संग्राम का। इस शासन व्यवस्था का अभिन्न और अनिवार्य अंग था भ्रष्टाचार। स्वतंत्र भारत में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना कर हम स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य से भटक गए। हमारी स्वतंत्रता मात्र सत्ता परिवर्त्तन थी, शासन व्यवस्था परिवर्त्तन नहीं। यह सत्ता परिवर्त्तन लंदन से चलकर दिल्ली आया। हमने अपने संविधान में भी मूलतः वही शासन व्यवस्था अपना कर भ्रष्टाचार के दानव को एक सुरक्षित आश्रयणी प्रदान कर दिया है। हमारे राष्ट्रीय जीवन के हर आयाम – राजनीति, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, व्यापार, इत्यादि को भ्रष्टाचार कुप्रभावित, कुंठित और विकृत कर रहा है। हम भाषणों से, जन आंदोलनों से, कानूनों से और सत्ता परिवर्त्तन से भ्रष्टाचार के दानव से सिर्फ छाया युद्ध कर रहे हैं, असल दानव तो शासन

कैसे स्थापित होगी भारत में ऐसी शासन व्यवस्था? क्या ऐसा नहीं है कि भारत की, जो आज भ्रष्टाचार, गरीबी, सामाजिक अशांति और अन्य विकृतियों से ग्रस्त और त्रस्त है, यह गुलाबी तसबीर इतनी आकर्षक है कि सच हो ही नहीं सकती? कदापि नहीं। इसकी मार्गदर्शिका स्पष्ट है। भारत की शासन व्यवस्था इसके संविधान में निर्देशित है। अतः शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करना होगा।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भविष्य मे ऐसे संशोधनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संविधान संशोधन की अपेक्षाकृत सरल संवैधानिक प्रक्रिया निर्धारित की है। दो तिहाई बहुमत से संसद ऐसा संविधान संशोधन कर सकता है। संसद सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। शासन व्यवस्था परिवर्त्तन सम्बंधित विचारों को यदि जनता तक पहुँचाया जाय तो इतिहास इसका साक्षी है कि अनोखी समझ वाली प्रभावनीय भारतीय जनता इसे अवश्य समझेगी और तदनुकूल सक्रिय होगी। सूचना तकनीकी में क्रांतिकारी विकास की मदद से जनता को इस तरह जागृत, शिक्षित और अभिप्रेरित करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है।

व्यवस्था की आश्रयणी में है। भारत की वर्त्तमान शासन व्यवस्था मूलतः वही है जो औपनिवेशिक भारत में थी, जो एक समृद्ध उपनिवेश का शोषण या व्यवस्थित लूट तथा इसके संस्कृति–समृद्ध लोगों के नैतिक अधोपतन के लिए दूरदर्शितापूर्वक अभिकल्पित और कुशलतापूर्वक संचालित थी। भ्रष्टाचार इस व्यवस्था का अभिन्न अंग था और कोई अपराध नहीं था। गणतंत्र भारत में भ्रष्टाचार तो अपराध की श्रेणी में आ गया है लेकिन इसकी शोषणात्मक और अनैतिकता–परक शासन व्यवस्था में भ्रष्टाचार शोषण का माध्यम और अनैतिकता का सूचक के रूप में विद्यमान है। अतः इसी शासन व्यवस्था में किसी भी कानून से भ्रष्टाचार का उन्मूलन दिवास्वप्न है। भ्रष्टाचार का एकमात्र निदान शासन व्यवस्था परिवर्त्तन है।

इस निदान की प्रामाणिकता और प्रभावकारिता से सहसा लोग आश्वस्त नहीं होते हैं। प्रायः लोग इस शासन व्यवस्था के इतने अभिज्ञ और अभ्यस्त हैं कि इससे या इसमें कुछ सुधारों के साथ व्यवस्था से इतर भी कोई व्यवस्था हो सकती है या है, इसकी सहसा कल्पना नहीं करते। समझते हैं कि जब लोग यही रहेंगे तो परिवर्त्तित व्यवस्था कितना और कैसे भिन्न रहेगी, इतना भिन्न कैसे होगी कि भ्रष्टाचार जैसी विशालकाय और दुःसाध्य समस्या उसमें अपने आप नष्टप्राय हो जायेगी। अतः उस परिवर्त्तित शासन व्यवस्था का कुछ बोध कराना आवश्यक प्रतीत होता है, यद्यपि इसकी विस्तृत रूपरेखा यहाँ देना व्यावहारिक नहीं है।

लोकतंत्र में राज्य की प्रभुसत्ता व्यक्ति में निहित होती है और जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना में ही चिह्नित है, यह हमारे संविधान की आत्मा है। लेकिन संविधान में विहित ओर देश की वर्तमान शासन व्यवस्था इसके अनुरूप नहीं है। फलतः यह व्यवस्था संविधान की प्रस्तावना में ही उल्लिखित भारत के लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने में सर्वथा विफल रही है। उदाहरण के लिए, हमारा गणतंत्र लोकतांत्रिक होगा, यह संविधान की मान्यता है। लेकिन जैसा कि ''राष्ट्रीय कायाकल्प'' के मार्च 2014 के अंक में दिखलाया गया है, भारत का लोकतंत्र बहुत सीमित, भ्रामक और विकृत है। यह इस शासन व्यवस्था के चलते है। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में लोकतंत्र नीचे से लेकर ऊपर तक जीवंत और कार्यशील रहेगा। जहाँ वर्त्तमान शासन व्यवस्था में शासन एक केन्द्र और 29 राज्यों में केन्द्रित है, परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के अलावा हर गाँव शासन का केन्द्र होगा, गाँधी जी द्वारा निर्देशित 'ग्राम गणतंत्र' की अवधारणा के अनुरूप हर गाँव की अपनी स्वायत्त सरकार होगी। इसके अलावा, शासन की ऐसी व्यवस्था रहेगी जिसमें लोगों के जीवन की मूलभूत और अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो तंत्र होगा उसके गठन और संचालन में सम्बद्ध जनता की पूरी भागीदारी होगी। जीवंत लोकतंत्र में, ''जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए'' सरकार की जो अवधारणा है, परिवर्त्तित शासन व्यवस्था उसी के आसपास होगी। ऐसी शासन व्यवस्था न तो अव्यावहारिक है और न ही ऐसी है कि जिसका अनुभव विश्व में नहीं है। ऐसी शासन व्यवस्था अमेरिका जैसे लोकतांत्रिक देश में सफलतापूर्वक कार्यशील है जिसके कारण भ्रष्टाचार, अन्तर्विद्रोह जैसी समस्याओं से वह देश प्रायः मुक्त है। ऐसी शासन व्यवस्था स्थापित होने पर भारत में भी न सिर्फ भ्रष्टाचार समाप्तप्राय होगा, बल्कि राजनीति का नैतिक स्तर काफी ऊपर उठेगा, विकास समावेशी होगा, इसकी गति दस गुणा से ज्यादा बढ़ जायेगी और विकास की धारा गाँवों से प्रस्फुटित होगी, देश में फैला अंतर्विद्रोह

आधारहीन हो जायेगा, गरीबी निश्चित रूप से घटती जायेगी, अपने संसाधनों और प्रतिभा के अनुरूप देश समृद्ध होता जायेगा और इस तरह एक नये भारत का उदय होगा।

कैसे स्थापित होगी भारत में ऐसी शासन व्यवस्था? क्या ऐसा नहीं है कि भारत की, जो आज भ्रष्टाचार, गरीबी, सामाजिक अशांति और अन्य विकृतियों से ग्रस्त और त्रस्त है, यह गुलाबी तसबीर इतनी आकर्षक है कि सच हो ही नहीं सकती? कदापि नहीं। इसकी मार्गदर्शिका स्पष्ट है। भारत की शासन व्यवस्था इसके संविधान में निर्देशित है। अतः शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन करना होगा।

हमारे संविधान निर्माताओं ने भविष्य मे ऐसे संशोधनों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संविधान संशोधन की अपेक्षाकृत सरल संवैधानिक प्रक्रिया निर्धारित की है। दो तिहाई बहुमत से संसद ऐसा संविधान संशोधन कर सकता है। संसद सदस्य

जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। शासन व्यवस्था परिवर्त्तन सम्बंधित विचारों को यदि जनता तक पहुँचाया जाय तो इतिहास इसका साक्षी है कि अनोखी समझ वाली प्रभावनीय भारतीय जनता इसे अवश्य समझेगी और तदनुकूल सक्रिय होगी। सूचना तकनीकी में क्रांतिकारी विकास की मदद से जनता को इस तरह जागृत, शिक्षित और अभिप्रेरित करना अपेक्षाकृत सरल हो गया है। आज की दलीय राजनीति के मद्देनजर एक ऐसे दल का गठन अनिवार्य होगा जो शासन व्यवस्था परिवर्त्तन के लिए प्रतिबद्ध हो। अभिप्रेरित जनता भारत की विश्वसनीय चुनाव प्रक्रिया द्वारा ऐसे दल को अवश्य आवश्यक बहुमत प्रदान करेगी और इस बहुमत से संसद वांछित संविधान संशोधन कर पायेगा। इस संशोधित संविधान के अन्तर्गत कानूनी और प्रशासनिक प्रक्रियाओं द्वारा देश में परिवर्त्तित शासन व्यवस्था स्थापित हो जायेगी। इस व्यवस्था के माध्यम से एक भ्रष्टाचार मुक्त नये भारत का उदय होगा।

इस तरह दिव्यद्रष्टा महात्मा गाँधी के प्रेरणादायी नेतृत्व में संचालित विश्व का अनोखा स्वतंत्रता संग्राम अपना लक्ष्य प्राप्त करेगा, लाखों स्वतंत्रता सेनानियों का बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा और करोड़ों भारतीयों का वर्षों से संजोये स्वतंत्र भारत का सपना साकार हो उठेगा। भारत के भ्रष्टाचार के रोग का यही वास्तविक निदान है और भारत के भ्रष्टाचार का यही, और सिर्फ यही, समाधान है।

भारत के हर नागरिक से अपील

- **भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन के अभियान को आप समझें**
- **इसके लिए आप राष्ट्रीय कायाकल्प, भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन मंच के वेबसाइट और ब्लॉग का इस्तेमाल कर सकते हैं।**
- **संस्था का सदस्य बनकर इसके विभिन्न कार्यों में सहयोग करें।**
- **आर्थिक सहयोग कर राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में सहयोग करें।**

भारतीय शासन व्यवस्था परिवर्तन विचार मंच

173बी श्रीकृष्णपुरी, पटना–800001

टेलीफोन : **0612–2541276** ईमेल : **rashtriyakayakalp@gmail.com**

प्रश्नोत्तर के माध्यम से

शासन व्यवस्था परिवर्तन के इस

अभियान को समझना

प्र० 9 परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में विकास का क्या परिदृश्य होगा?

उ० जैसा कि प्रश्न सं० 8 के उत्तर में कहा गया है अभी केन्द्र सरकार द्वारा भेजी गयी राशि का 15% ही गाँव के विकास कार्य के लिए गांव में पहुँचता है। कमोबेश गाँव में राज्य सरकार सम्पोषित विकास योजनाओं की भी यही स्थिति है। यह समझना आवश्यक है कि केन्द्र द्वारा गाँव के लिए भेजी गयी राशि जिस राष्ट्रीय खजाने से आती है उसमें सिर्फ लोगों द्वारा, जो तत्त्वात्मक रूप से विश्लेषण करने पर गाँव के लोगों द्वारा भी, कर के रूप में दी गयी राशि है।

जैसा कि सर्वविदित है कि कर प्रणाली में भ्रष्टाचार व्याप्त है, यह मानना अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि लोगों के द्वारा किसी न किसी रूप में दिये गये कर के 1 रूपया में सिर्फ 50 पैसे ही दिल्ली के राष्ट्रीय खजाने में पहुँचता है। इस तरह लोगों द्वारा उनके विकास के मद में दी गयी राशि का सिर्फ 7.5% ही कर गाँव में विकास के लिए पहुँचता है। शेष 92.5% राशि गाँव से दिल्ली और दिल्ली से गाँव तक की यात्रा में विलुप्त हो जाती है। कुछ इसी तरह की विलोपकारी प्रक्रिया होती है जब लोगों का पैसा गाँव से राज्य की राजधानी और उस राजधानी से गाँव की यात्रा करता है। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में गाँव के लोगों के पैसों की ये यात्राएँ नहीं होंगी जिससे लोगों द्वारा दिए हुए पैसे का प्रायः 100% उनके विकास कार्यों में ही लगेगा, जो उनके जीवन और जीने को समुन्नत करेगा। और, केन्द्र और राज्य सरकारें भी उन विकास योजनओं पर ज्यादा ध्यान दे सकेंगी जो उन्हीं के स्तर पर सम्पादित होना है। इस परिवर्तित शासन व्यवस्था में विकास की गति समग्र रूप से कम से कम 10 गुना तेज होगी। और फिर, अधिकांश विकास वहाँ होंगे जहाँ अधिकांश लोग रहते हैं। विकास के ऐसे परिदृश्य में निम्नलिखित बातों में प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होंगे, (1) विभिन्न क्षेत्रों के बीच तथा गाँव और शहर में व्याप्त विकास का असंतुलन समाप्त हो जायेगा और (2) गाँव के जीवन में गुणात्मक सुधार होगा और गाँवों में रोजगार के अवसर सृजित होंगे जो गाँवों से शहरों की ओर पलायन को समाप्त कर देगा।

प्र० 10 क्या परिवर्त्तित शासन व्यवस्था का देश में व्याप्त गरीबी और आर्थिक असमानता की स्थिति पर कोई प्रभाव होगा?

उ० वर्त्तमान शासन व्यवस्था जो मूलतः औपनिवेशिक शासन व्यवस्था का ही अनुवर्ती है, शोषणात्मक है। जब भारत गुलाम था, इस शोषण के लाभार्थी थे अंग्रेज और भारतीयों के वे वर्ग जो किसी न किसी रूप में इस शोषण में सहायक थे। भारतीय जन समुदाय इस शोषण का शिकार था जिसके फलस्वरूप वे दिनों–दिन गरीब होते चले गए। स्वतंत्र भारत में जहाँ मूलतः वही शासन व्यवस्था लागू है, इस शोषण के लाभार्थी वे लोग हैं जो शासन तंत्र को या तो नियंत्रित करते हैं या किसी न किसी रूप से प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह भारत का यह लाभार्थी वर्ग भारतीय जनसमूह, जो अधिकांशतः गाँवों में रहता है, की कीमत पर धनी होता गया। चूँकि परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में यह शोषण नहीं रहेगा, उत्पादित राष्ट्रीय धन न्यायोचित रूप से समाज के विभिन्न वर्गों में वितरित होगा जिससे गरीबी और आर्थिक असमानता दोनों घटेगी।

नब्बे के प्रारंभिक वर्षों में तथाकथित ''आर्थिक सुधारों'' के लागू होने के बाद, भारतीय अर्थव्यवस्था में एक दूसरा तत्त्व कार्यशील हो गया। भारत के बड़े बाजार को बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठानों और विदेशी कंपनियों को निर्बाध दोहन करने की खुली आजादी दे दी गयी। चूँकि मुनाफा कमाना इस दोहन का प्रबल उद्देश्य है, भारत का मध्यम वर्ग जो इस दोहन में इन प्रतिष्ठानों और कंपनियों को विभिन्न रूपों से सहायता करता है, जहाँ दृश्य रूप से अपनी आर्थिक बढ़ोत्तरी करता है, वहीं अदृश्य रूप से भारतीय जनसमूह और गरीबी की ओर बढ़ता है। यह समझना आवश्यक है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में यह मूलभूत परिवर्त्तन भारतीय संविधान की प्रस्तावना में अभिव्यक्त भारतीय जनसमूह की संवैधानिक आकांक्षाओं की घोर अवहेलना करता है, और वर्त्तमान शासन व्यवस्था में जनसमूह अपने ऊपर थोपा गया इस मूलभूत आर्थिक परिवर्त्तन का प्रतिकार करने में सर्वथा असहाय महसूस करता है। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में जब जनता नीचे स्तर से ही प्रभावी रूप से सशक्त हो जायेगी, इसकी समाजवादी आकांक्षाओं का सिर्फ अभिज्ञान और सम्मान ही नहीं, इनपर प्रभावी कदम भी उठाया जा सकेगा, जिससे जनता का दोहरा शोषण नहीं हो। ऐसा होने से गरीबी और आर्थिक असमानता की स्थिति में काफी सुधार होगा।

प्र० 11 देश में व्याप्त सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह पर परिवर्त्तित शासन व्यवस्था का क्या प्रभाव होगा?

उ० समाज के किसी वर्ग में जब ऐसी अनुभूति होती है कि वर्त्तमान समाजिक–राजनीतिक–आर्थिक व्यवस्था द्वारा वे उत्पीड़न और अन्याय के शिकार हैं और सरकार न सिर्फ इस समस्या पर ध्यान ही नहीं देती है बल्कि इसे सम्पोषित भी करती है, तो समाजिक अशांति उत्पन्न होती है। इससे इस वर्ग को सरकार से विरक्ति ही नहीं वैमनस्य की भावना भी पनपने लगती है। जब इन्हें ऐसा भान होने लगता है कि दूरस्थ सरकार न सिर्फ उनकी व्यथा नहीं सुनती और उसे कम करती है, बल्कि उत्पीड़न और अन्याय का पोषण भी करती है तो वे इस व्यवस्था से विमुख और सरकार के विरूद्ध हो जाते हैं, जिससे अन्तर्विद्रोह प्रस्फुटित और प्रोत्साहित होता है। परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में जब सरकार उसी गाँव में होगी जहाँ वे रहते हैं, उन्हें न सिर्फ अपनी व्यथा सुनाने का बिल्क उन्हें स्वयं सरकार में शामिल होने का और प्रभावित करने का भरपूर अवसर रहेगा। ऐसी स्थिति में सामाजिक अशांति और अन्तर्विद्रोह का जन्म ही नहीं होगा।

प्र० 12 परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में राजनीतिक वृत्ति और व्यवहार में क्या आज जो देखा जा रहा है उसमें ऐसा ही नैतिक अधोपतन रहेगा या स्थिति कुछ भिन्न होगी?

उ० किसी भी देश का राजनीकि स्वरूप वहाँ की शासन व्यवस्था से परिभाषित और तय होता है। वर्त्तमान शासन व्यवस्था में, जो मूलरूप से लोगों के शोषण और नैतिक पतन के लिए बनाई गई थी, राजसत्ता देश और राज्यों की राजधानियों में कतिपय बिन्दुओं पर ही केन्द्रीकृत है। अतः देश की पूरी रजनीति इन बिन्दुओं पर केन्द्रित राजसत्ता को पाने को उन्मुख है। चूँकि यह शासन व्यवस्था तथाकथित ''संसदीय लोकतंत्र'' से संचालित है, जिसमें राजनीतिक दलों की भूमिका अनिवार्य है, बहुत से क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दल उभरे हैं, जो बिना सिद्धांतों और नैतिकता की परवाह किए सत्ता केन्द्रित राजनीति करते हैं। इन दलों का चरित्र और स्वरूप इसी तरह की राजनीति से परिभाषित है। किसी भी दल का अनिवार्य रूप से कोई राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक सिद्धांत और कार्यक्रम नहीं है; किसी भी दल का जन समुदाय के विशाल निचले स्तर पर कोई ठोस आधार नहीं है; किसी दल का फंड और खाता पारदर्शी और विश्वसनीय नहीं है; किसी भी दल में आंतरिक लोकतन्त्र नहीं है; और भारतीय गणतंत्र के प्रायः हर दल के नेतृत्व में पारिवारिक परम्परा की स्पष्ट झलक है जिसमें अंतिम निर्णय उसका सुप्रीमो करता है। चूँकि सत्ता वोट के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है, जनता का वोट पाने के लिए प्रायः हर दल विभिन्न तरीकों और तिकड़मों को अपनाने में कोई परहेज नहीं करता। जनता उनके लिए ''वोट बैंक'' बन कर रही गयी है। इस राजनैतिक खेल में जाति, सम्प्रदाय या समाज को बाँटने वाली अन्य भावनाओं को उभारने में कोई नैतकिता आड़े नहीं आती। इस तरह की राजनीति के चलते आज भारतीय समाज विभिन्न दरारों से विखंडित हो गया है, यथा हिंदू बनाम मुस्लिम, दलित बनाम गैर दलित, पिछड़ा बनाम अगड़ा, महाराष्ट्री बनाम उत्तर भारतीय, एवं गरीब बनाम अमीर।

परिवर्त्तित शासन व्यवस्था में जहाँ सत्ता पूर्णरूपेण विकेन्द्रित हो जायेगी और आम जनता सशक्तीकृत होगी, राजनीति का स्वरूप ही बदल जायेगा। जहाँ सत्ता कुछ खास बिन्दुओं पर केन्द्रित नहीं होकर भारत के लाखों गाँवों तथा अन्य निकायों में स्थापित हो जायेगी, यह वैयक्तिक स्वार्थ सिद्धि का साधन न होकर जन सेवा का माध्यम बन जायेगी। राजनीतिक वृत्ति और व्यवहार तदनुरूप ही परिवर्त्तित हो जायेगा। तब समाज के विचारवान, प्रबुद्ध, दूरद्रष्टा और समर्पित व्यक्ति राजनीतिक वृत्ति की ओर आकर्षित और प्रेरित होंगे और राजनीति के स्तर को उर्द्धवगामी बनाएंगे।

प्र० 13 वर्त्तमान शासन व्यवस्था को कैसे बदला जा सकता है?

उ० भारतीय संविधान की संरचना के अन्तर्गत यथास्थापित तरीकों से वर्त्तमान शासन व्यवस्था में वांछित बदलाव लाया जा सकता है। वर्त्तमान शासन व्यवस्था, जो कार्यरूप से Govt. of India Act 1935 का ही स्वरूप है, भारतीय संविधान में परिभाषित और वर्णित है। इस संविधान की प्रस्तावना में स्वतंत्र भारत में जनता की आकांक्षाएं और अपेक्षाएं भी उल्लेखित है। भारतीय गणतंत्र के छः दशकों के अनुभव से स्पष्ट है कि यह शासन व्यवस्था उन आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को फलीभूत करने में अक्षम रही है और ऐसा इसलिए कि यह व्यवस्था इसके लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। सिर्फ यही नहीं, इस व्यवस्था ने देश को कइ बुराइयों से भी आक्रांत कर दिया है यथा भ्रष्टाचार, अन्तर्विद्रोह और आर्थिक असमानता। भारतीय संविधान में समुचित संशोधन कर यह शासन व्यवस्था बदली जा सकती है। संवैधानिक प्रावधान के अनुसार यदि ससंद के दोनों सदन दो–तिहाई बहुमत से कोई संशोधन कर देते हैं तो संविधान संशोधित हो सकता है। जब ऐसा संशोधन विधेयक पारित होकर राष्ट्रपति की सहमति के बाद अधिनियम बन जाता है, तो उसका कार्यान्वयन प्रशासनिक कार्रवाइयों से किया जा सकता है, जिसे करने में तत्कालीन सरकार पूर्णतः समर्थ होगी। इस तरह, इस देश में परिवर्त्तित शासन व्यवस्था स्थापित की जा सकेगी जिससे जनता की आकांक्षाओं के अनुरूप एक नये भारत का अभ्युदय और अभ्युत्थान होगा।

पंडित जवाहर लाल नेहरु

''थोड़े समय के लिए जो प्रदेशों में काँग्रेस की सरकार कार्यरत रही उससे हमलोगों की यह धारणा दृढ़ हो गयी कि ब्रिटिश द्वारा थोपी गयी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था भारत की प्रगति में सबसे बड़ा बाधक है। ... इसलिए उस व्यवस्था को हाटाने पर हमारा प्रयास केन्द्रित होना चाहिए और दूसरी चीजों पर लगाई गयी ऊर्जा उसी तरह निष्फल होगी जैसे बालू में हल जोतना। ... इस ब्रिटिश राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था के रहते भारत में किसी तरह का लोकतंत्र संभव नहीं है और दोनों में टकराव अवश्यम्भावी है। भारत की जितनी भी जटिल लगने वाली समस्याएं हैं वे असल में इस राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को कमोबेश कायम रखते हुए प्रगति के प्रयास करने से ही हैं। राजनीतिक प्रगति इस बात पर निर्भर करती है कि यह व्यवस्था और वर्त्तमान निहित स्वार्थ भी अक्षुण्ण रहे। लेकिन दोनों में कोई सामंजस्य नहीं है।''

(पंडित जवाहर लाल नेहरु द्वारा 1942–46 की अवधि में अहमदनगर जेल में लिखित और 1946 में प्रकाशित ''डिस्कवरी ऑफ इंडिया'' पुस्तक से उद्धृत। स्वतंत्रता पूर्व पंडित नेहरू के ये विचार भारतीय संविधान में अवतरित नहीं हो सके)

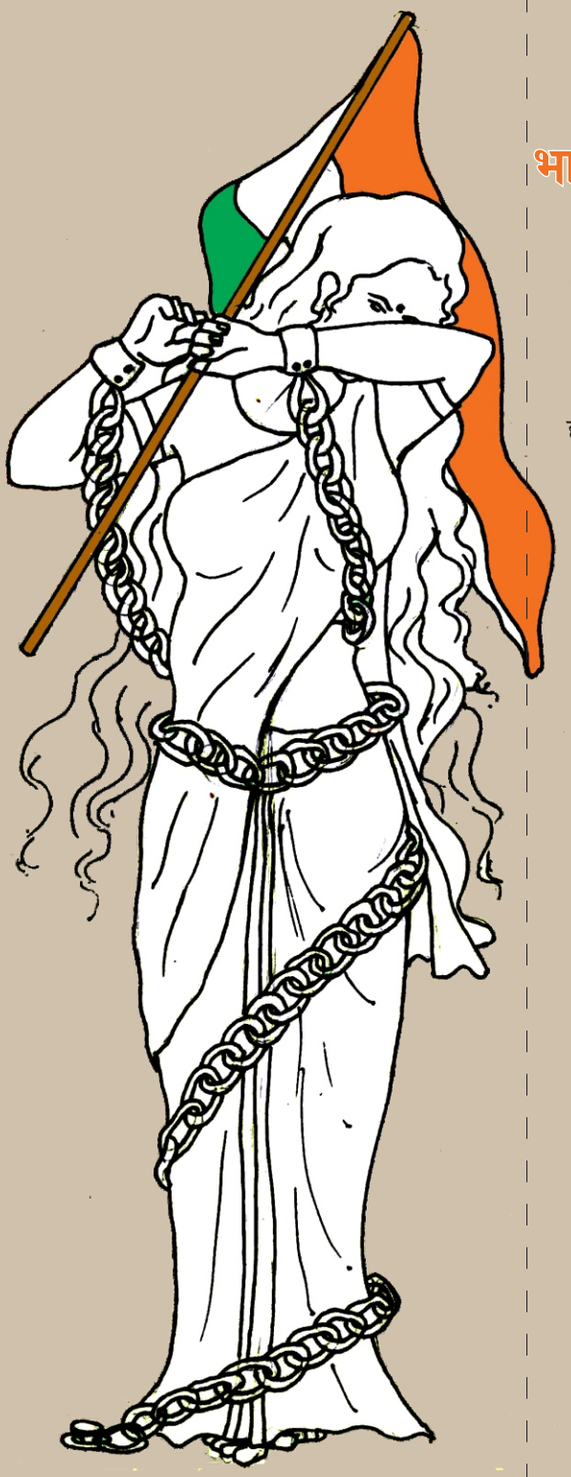

भारत माँ अभी भी जंजीरों में

''सदियों से गुलामी की जंजीर में जकड़ी भारत माँ 1947 में इन जंजीरों से मुक्त नहीं हुई। ब्रिटिश संसद से पारित भारतीय स्वतंत्रता का कानून 1947 के तहत सत्ता हस्तांतरण कर अंग्रेजों ने सिर्फ इस जंजीर में लगे हुए ताले की चाभी भारतीयों के हाथों में सौंप दी। इस चाभी से ताला खोलकर भारत माँ को इन जंजीरों से मुक्त करने के बजाय 1950 के 26 जनवरी को इस ताले को बदल कर नया ताला लगा कर मुक्ति का सिर्फ अहसास कर लिया गया। वह जंजीर बदस्तूर कायम रही। बल्कि समय के साथ इन जंजीरों में जंग लगने से जकड़ के साथ और विकृतियाँ उत्पन्न हो रही है। हमें भारत माँ को वास्तव में इन जंजीरों से मुक्त कराना है, जिससे भारत माँ के शरीर में रक्त का संचार ठीक से हो सके, विभिन्न रोगों से छुटकारा मिले और अंग प्रत्यंग पुष्ट हो। भारत में आधी-अधूरी और फलतः विकृत स्वतंत्रता के स्थान पर पूर्ण और स्वस्थ स्वतंत्रता का आविर्भाव करना है। जन-गण की संप्रभुता को संविधान के पन्नों से निःसृत होकर जन जीवन में लाना है। और इस सब के लिए शासन व्यवस्था में तदनुरूप परिवर्त्तन लाना अनिवार्य है।''